पवनविजय-स्वरोदय

Pavanavijaya-svarodaya

Department of Libraries & Research
Jammu & Kashmir, Srinagar
2017

पवनविजय–स्वरोदय

Pavanavijaya-svarodaya

Kashmir Series of Texts and Studies
No. 116

सम्पादक

के. सी. शर्मा

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,

कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर

Department of Libraries & Research

Jammu & Kashmir, Srinagar

2017

Kashmir Series of Texts and Studies
No. 116

Price: ₹500.00
Overseas: $ 15.00

© Director, Libraries & Research
Jammu & Kashmir

All rights reserved. No part of this book may be reproduced in any form whatsoever, e.g. by photoprint, microfilm or any other means without written permission from the publishers.

Printed at: Crown Printing Press, Srinagar
Phone: +91-194-2451249 | +91 9796737362

प्रस्तावना

जम्मू-कश्मीर पब्लिक लाइब्रेरी जम्मू-कश्मीर राज्य में पांडुलिपियों का सबसे अमीर भंडार है और यह देश के कुछ पांडुलिपि भण्डारों में से एक है। सार्वजनिक पुस्तकालय में संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, कश्मीरी और उर्दू जैसे विभिन्न भाषाओं में लगभग 6000 पांडुलिपियों की संख्या है। हालांकि पांडुलिपियों के प्रमुख कक्ष संस्कृत, फारसी और अरबी में हैं पांडुलिपि की आयु 700 से लेकर 200 वर्ष की है और इनमें से कुछ सबसे अधिक मूल्यवान हैं, जिसकी प्रति दुनिया भर में किसी भी पुस्तकालय में नहीं मिल सकता है। यद्यपि, पांडुलिपियों को डिजीटल किया गया है और वे डीवीडी फ़ॉर्म में भी उपलब्ध हैं, लेकिन इन पांडुलिपियों का संरक्षण एक बड़ी चुनौती है, और इन पांडुलिपियों में निहित ज्ञान का प्रसार एक बड़ी चुनौती है। पांडुलिपियों में निहित बहुमूल्य ज्ञान का प्रसार करने के लिए बहुत कम किया गया है और यह एक वास्तविकता नहीं होगा, जब तक कि ये देश या दुनिया की सामान्यतः ज्ञात और पढ़ी जाने वाली भाषाओं में अनुवादित न हों, और ये वास्तव में मेरे दिमाग पर लंबे समय तक उभर रहैं हैं । इस संबंध में वर्तमान में चल रहे प्रयासों में से, हमने पांडुलिपियों का अनुवाद करने की कोशिश की है और वर्तमान अनुवादित पांडुलिपि विभाग के ऐसे प्रयासों का परिणाम है। यह पांडुलिपि, पवनविजिया-स्वरोदय में योग, लगभग 300 वर्ष पुराना है, जो संस्कृत भाषा में लिखी गयी है।

पांडुलिपि पवनविजय-स्वरोदय जो डॉ करतार चंद शर्मा, वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर द्वारा संपादित किया गया है, दुर्लभ और एक महत्वपूर्ण

है। इस पांडुलिपि की सामग्री योग से संबंधित है। योग केवल शारीरिक फिटनेस के लिए महत्वपूर्ण नहीं है लेकिन मानसिक शांति के लिए भी आवश्यक है। यही कारण है कि यह दुनिया भर में फैल रहा है। आज हर व्यक्ति अपने दिन-प्रतिदिन में बहुत व्यस्त है और जीवन में बोझ और तनाव के कारण कई प्रकार की शारीरिक और मानसिक बीमारियां हो रही हैं। इसलिए लोगों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए केवल योग ही मदद कर सकते हैं और इस प्रकार के ग्रंथों में वे तंत्र के समानांतर ग्रंथ हैं, जैसे वेद मानव की सृष्टि नहीं हैं, जैसे मानव द्वारा निर्मित तंत्र भी नहीं। तंत्र का अर्थ है योगिक प्रथाओं जिसके द्वारा अज्ञान हटाया जा सकता है। पांडुलिपि की सामग्री जो शर्मा द्वारा संपादित की गई है वह महत्वपूर्ण हवा या श्वास प्रक्रिया पर आधारित है। दरअसल, जब हम साँस लेते हैं तो कभी-कभी हवा का प्रवाह सही नाक में होता है, कभी-कभी बाएं नथुने में होता है और कभी-कभी दोनों नथुने में, इस प्रक्रिया को स्वारा कहा जाता है। स्वारा की यह पूरी प्रक्रिया एक व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है। योगी जो साँस लेने की प्रक्रिया को नियंत्रित कर सकते हैं और वायु के प्रवाह की पहचान कर सकते हैं, न केवल उन्हें लाभ हुआ है बल्कि इसके आधार पर अन्य व्यक्तियों को भी मार्गदर्शन कर सकते हैं । स्वारा या श्वास प्रक्रिया की प्रक्रिया से संबंधित पुस्तक का पहला अध्याय। बाएं नथुने में महत्वपूर्ण हवा का प्रवाह इडानाडी कहा जाता है, सही नथुने में महत्वपूर्ण हवा के प्रवाह को पिंगलानाडी कहा जाता है और दोनों नथों में प्रवाह को सुसुमानानादी कहते हैं दूसरा अध्याय शरीर के भीतर पांच सकल तत्वों की भूमिका को शामिल करता है जैसे अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और ईथर। तीसरे अध्याय में उस व्यक्ति के बारे में बताया

गया है जो श्वास की प्रक्रिया को जानता है कि लड़ाई में दुश्मन को ठीक से संभाल सकता है। निम्नलिखित अध्याय महिलाओं की गर्भावस्था और महिलाओं को नियंत्रित करने के ज्ञान के बारे में जानकारी प्रदान करता है। पुस्तक का 6 वां अध्याय नए साल के समय से संबंधित है कि कैसे नए साल के समय से निपटने के लिए और अनुष्ठानों और अन्य कार्यों के लिए उचित समय चुनकर लाभ प्राप्त कर सकते हैं। अनुकूल स्वारों और सकल तत्वों के अनुसार समय के उचित चयन पर भी खेती का अच्छा परिणाम है। 7 वां अध्याय बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह रोगों के बारे में ज्ञान का वर्णन करता है कि कैसे योगी श्वास प्रक्रिया के ज्ञान के कारण रोगों से स्वयं को रोक सकता है। इतना ही नहीं कि इस प्रक्रिया की मदद से वह रोगों के मामले में दूसरों को भी मार्गदर्शन कर सकता है। निम्नलिखित अध्याय एक व्यक्ति की जिंदगी और मृत्यु के साथ संबंधित है। पुस्तक का अंतिम अध्याय ध्यान और उसके लाभ से संबंधित है ।।

मुझे उम्मीद है कि विभाग के इस प्रयास की सराहना की जाएगी और प्रचारित किया जाएगा, मैं प्रोफेसर को अपना आभार व्यक्त करता हूं, जिन्होंने बिना किसी भी पारिश्रमिक के पांडुलिपि का अनुवाद किया है। उन्होंने वास्तव में एक महान काम किया है जो न केवल विद्वानों और छात्रों के लिए उपयोगी होगा लेकिन आम आदमी के लिए बहुत उपयोगी है ।

मुख्तार-उल-अजीज
निदेशक पुस्तकालय और अनुसंधान,
जम्मू और कश्मीर

शुभाशंसा

पवनविजय–स्वरोदय एक तन्त्र–ग्रन्थ है। इसमें नौ प्रकरण हैं– स्वर–प्रकरण, तत्त्वनिर्णय–प्रकरण, युद्ध–प्रकरण, वशीकरण–प्रकरण, गर्भ–प्रकरण, संवत्सर–प्रकरण रोग–प्रकरण, काल–प्रकरण एवं नाड़ी–प्रकरण।

पवनविजय का अर्थ है पवन अर्थात् प्राण पर विजय प्राप्त करना। यहाँ पवन का अर्थ उस प्राणवायु अथवा श्वास–प्रश्वास है जो हमारे नाक के दोनों नथुनों मे चलता रहता है। मनुष्य का श्वास–प्रश्वास कभी दायें नथुने से, कभी बायें नथुने से और कभी दोनों नथुनों से प्रवाहित होता है। श्वास–प्रश्वास के इन्हीं तीन प्रकारों के प्रवाहों को तीन प्रकार के स्वरों के रूप में जाना जाता है। ये तीन स्वर मनुष्य व्यवहार को प्रभावित करते हैं। अतः मनुष्य को स्वरशास्त्र में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार प्रवाहित स्वरों की पहचान कर कार्य करना चाहिए। पवनविजय–स्वरोदय स्वरशास्त्र के नियमों का प्रतिपादक ग्रन्थ है। जिसके नौ अध्यायों में क्रमशः स्वरशास्त्र का महत्त्व, स्वर से सम्बद्ध इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ियों से प्रवाहित श्वास–प्रश्वास, मानवशरीर में व्याप्त नाड़ियों, नाड़ियों की संख्या; सृष्टि–निर्माण में पंच–तत्त्वों का महत्त्व, पंचतत्त्वों का स्वादानुसार भेद; श्वास–प्रश्वास की गती, पृथ्वी आदि तत्त्वों की प्रधानता में मनुष्य के विचारो पर पड़ने वाला प्रभाव, मानवशरीर में पृथ्वी आदि तत्त्वों की मात्रा; युद्ध की दशा में चन्द्रनाड़ी और सूर्यनाड़ी का प्रभाव

और फल; वशीकरण के उपाय; पुरुष सहवास काल में तथा स्त्री के नाड़ी प्रवाह के अनुसार पुरुष अथवा स्त्री सन्तान की प्राप्ति; दक्षिणायन एवं उत्तरायण दशा में नाड़ीप्रवाह के अनुसार अन्नादि वृद्धि अथवा दुर्भिक्ष का ज्ञान; स्वर प्रवाह के अनुसार आरोग्य–अनारोग्य का ज्ञान; प्राणादि को स्थिर कर कालादि का ज्ञान; इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना एवं पूरक, कुम्भक, रेचक के कार्य एवं फल आदि का विवेचन वर्णित है। पवनविजय–स्वरोदय के रचनाकार की मान्यता के अनुसार स्वरोदयशास्त्र का पाठ करनें वाला मनुष्य तब तक जीवित रहता है, जब तक सूर्य चन्दमा का अस्तित्व है।

मुझे प्रसन्नता है कि मेरे शिष्य, कश्मीर (युनिवर्सिटी), संस्कृत विभाग के एसिस्टेण्ट प्रोफेसर डॉ. कर्तार चन्द शर्मा पवनविजय–स्वरोदय ग्रन्थ को हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित कर रहे हैं। तन्त्र जैसे गूढ विषय को सरल एवं बोधगम्य भाषा में अनुदित कर उन्होने तन्त्रशास्त्र एवं इसके पाठ्कों को उपकृत किया है। आशा है तन्त्रशास्त्र के प्रति रुचि रखने वालों के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होगा। सम्पादक को मेरा शुभाशीर्वाद।

प्रो. केदारनाथ शर्मा,
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
एवं डीन, कला संकाय,
जम्मू विश्वविद्यालय,
जम्मू

दिनाङ्क : नवम्बर 26, 2017

Centre of Central Asian Studies

University of Kashmir, Hazratbal,
Srinagar-190 006 (J&K)

Dr. Wahid Nasaru
Sr. Assistant Professor
Sanskrit
Mobile:+91-9469042030
E-mail:wnasaru@yahoo.com

Dated: 14/11/2017

To,
The Director,
Libraries and Research,
Jammu & Kashmir,
Jammu/Srinagar.

Sir,

The manuscript *Pawanavijaya-svarodaya* edited by Dr. Kartar Chand Sharma, Sr. Assistant Professor, Department of Sanskrit, University of Kashmir, Srinagar is rare one and significant. The content of the said manuscript is related with *Yoga* comprising of 9 chapters.

Chapter 1st of the manuscript is related with *svara*, which means breathing by left or right nostril or by both effecting the behavior and health of concerned person. The following chapter relates with the five gross elements i.e. Fire, Air, Water, Earth and Ether. The person who knows the process of these elements within the body can modify his behavior. The ongoing chapter deals with inner struggle of person who knows the knowledge of *svara* and gross elements and accordingly can balance his self. While as the remaining chapter describes that how one can control to female member and can know about their pregnancy on the base of the knowledge of the *svaras* and gross elements. 6th chapter relates with the prediction of coming New Year. In 7th chapter there is description about the prevalent diseases. The last two chapters analyze the prediction of age and time and also covers field of meditation.

The content of whole manuscript is significant and as such I recommend the manuscript for publication.

With regards.

Yours sincerely,

14/11/2017

Dr. Wahid Nasaru

विषयानुक्रमणिका

अध्याय		प्रकरण	पृष्ठ या
प्राक्कथन			1–6
प्रस्तावना			7–26
प्रथम अध्याय	:	स्वर–प्रकरण	27–57
द्वितीय अध्याय	:	तत्त्वनिर्णय–प्रकरण	58–80
तृतीय अध्याय	:	युद्ध–प्रकरण	81–90
चतुर्थ अध्याय	:	वशीकरण–प्रकरण	91–94
पंचम अध्याय	:	गर्भ–प्रकरणम्	95–98
षष्ठ अध्याय	:	संवत्सर–प्रकरण	99–102
सप्तम अध्याय	:	रोग–प्रकरण	103–106
अष्टम अध्याय	:	काल–प्रकरण	107–111
नवम अध्याय	:	नाड़ी–प्रकरण	112–117
परिशिष्ट–१	:	श्लोकानुक्रमणिका	118–150
परिशिष्ट–२	:	शब्दानुक्रमणिका	151–159
परिशिष्ट–३	:	पारिभाषिक शब्दावली	160–167

....

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति में तीन शब्दों, यन्त्र, मन्त्र एवं तन्त्र का अत्यधिक महत्त्व है। क्योंकि सृष्टि का सारा रहस्य इन शब्दों में ही निहित है। इन तीनों शब्दों के बिना सृष्टि के किसी भी कार्य का सम्पन्न होना असम्भव सा है। हमें ऐसा लगता है कि विश्व में यान्त्रिक-विद्या एक नई विद्या है, क्योंकि आज के युग में यान्त्रिक-विद्या की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। जब कि वास्तविकता इससे भिन्न है। क्योंकि यन्त्र अथवा यान्त्रिक-विद्या का प्रयोग किसी न किसी रूप में सृष्टि कें आरम्भ से ही होता आया है और इसके प्रयोग के साथ-साथ यान्त्रिक-विद्या का प्रचार-प्रसार भी होता रहा है। इस बात को मानव-शरीर के उदाहरण से समझा जा सकता है- क्योंकि मानव-शरीर के अतिरिक्त कोई अन्य विशेष यन्त्र संसार में नहीं है। हमारा शरीर एक ऐसा यन्त्र है जो प्राण की ऊर्जा से संचालित होता है। मुख के मार्ग से अन्न के रूप में जो कुछ खाया जाता है, किस प्रकार शरीर के अन्दर विद्यमान भिन्न-भिन्न शारीरिक यन्त्र उस अन्न को रक्त के साथ-साथ शारीरिक तथा मानसिक ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं, एवं अनुपयुक्त तत्त्व को शरीर से बाहर निकाल देते हैं। इतना ही नहीं भारतीय संस्कृति में शरीर अथवा पिण्ड की समानता ब्रह्माण्ड से की जाती है। अतः पिण्ड यदि लघु यन्त्र है तो ब्रह्माण्ड अपने आप में एक बड़ा यन्त्र है। क्योंकि शरीर की ही तरह ब्रह्माण्ड की गतिविधियाँ भी आश्चर्यचकित करने वाली हैं। किस प्रकार ब्रह्माण्ड में पंचमहाभूतों- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश की उत्पत्ति स्वतः ही होती रहती है। जिनके अभाव में सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतः जिस प्रकार यन्त्र के समुचित प्रयोग के लिए एकाग्रता की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शरीर को स्वस्थ एवं उचित प्रकार से संचालित

करने के लिए भी एकाग्रता की आवश्यकता होती है, जो मनुष्य को मन्त्रों के मानसिक जप अथवा ध्यान से प्राप्त होती है। इसी प्रकार तान्त्रिक–विद्या का भी अपना महत्त्व है। 'तन्त्र' शब्द का अर्थ है ऐसे यौगिक अभ्यास जिनके द्वारा साधकों का मानसिक विकास होता है तथा जीव के वास्तविक रूप का ज्ञान प्राप्त होता है। अर्थात् जिस प्रकार विभिन्न दर्शनों का मत है कि जीव के शरीर धारण करने के पीछे कारण उसके अपने कर्म ही हैं। यह बात अलग है कि कुछ सामाजिक दर्शन इस का घोर विरोध भी करते हैं। परन्तु वे भी मनुष्य–जीवन से सम्बन्धित प्रश्नो का उत्तर नहीं दे पाते हैं। अतः आवश्यक है कि मनुष्य उचित प्रकार से साधना करके पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड के रहस्य को समझे। इस साधना के मार्ग में मन्त्र, तन्त्र तथा यन्त्र उसकी सहायता कर सकते हैं। क्योंकि मन्त्र एवं तन्त्र का लक्ष्य है, मनुष्य को वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति करवाना तथा यन्त्र का कार्य है वास्तविक ज्ञान को व्यवहारिक ज्ञान में परिवर्तित करना। सृष्टि के आदिकाल से ही ज्ञान के प्रसार के लिए संवाद–शैली का प्रचलन रहा है। क्योंकि ज्ञान का प्रसार बिना संवाद के सम्भव ही नहीं है। अतः सृष्टि के प्रारम्भ से ही ऋषियों अथवा साधकों के अपने अनुभव के आधार पर संवाद–शैली के द्वारा दुर्लभ ज्ञान का प्रसार किया जाता रहा है। इस ज्ञान का प्रसार किसी धर्म–विशेष के भले के लिए नहीं अपितु समस्त मानव–जाति की भलाई के लिए होता आया है। अनेक अवतारों का अवतरण भी सदैव संसार की भलाई के लिए ही होता आया है। 'पवनविजय–स्वरोदय' नाम के तन्त्र–ग्रन्थ का लक्ष्य भी मानव–जाति की भलाई ही है। 'तन्त्र' शब्द विस्तारार्थक तन् धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। अर्थात् **तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्**। ज्ञान का विस्तार करने के कारण ही इसे तन्त्र कहा जाता है। कामिकागमों के अनुसार यह शास्त्र तत्त्व एवं मन्त्र समेत विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत कर जीव का त्राण करता है; इसीलिए इसे तन्त्र कहा जाता है।

तनोति विपुलानर्थान् तत्त्वमन्त्रसमन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते।।

शारदातिलक तन्त्र प्रस्तावना पृ.२७

यद्यपि तन्त्र शब्द के अनेक अर्थ कोष आदि में कहे गये हैं, किन्तु उनका विवरण अप्रस्तुत होने से उनकी उपेक्षा कर शिव आदि से कथित तन्त्र का ही विश्लेषण प्रस्तुत है। तन्त्र-शास्त्र का अपर पर्याय साधना-शास्त्र या कर्म-शास्त्र है। इसका प्रणेता कोई नहीं है, वरन् इसका अनुस्मरणकर्ता ही है। तन्त्रशास्त्र के प्रधान रूप से आगम, यामल और तन्त्र ये तीन विभाग किये जा सकते है। रुद्रयामल तन्त्र में आगम की परिभाषा इस प्रकार है-

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजामुखे।
मतं श्री वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते।।

शारदातिलक तन्त्र प्रस्तावना पृ.२७

अर्थात् शिवमुख से आगत गिरिजामुख में गत वासुदेव सम्मत होने से आगम कहा जाता है। 'आगतम्', 'गतम्' एवं 'मतम्' इन तीन शब्दों के आधार पर ही आगम संज्ञा है। प्रस्तुत ग्रन्थ में स्वर-ज्ञान के प्रसार के लिए शिव एवं पार्वती ने संवाद के रूप में स्वर-ज्ञान को प्रस्तुत किया है। स्वर का सम्बन्ध हमारे अन्दर चलने वाले प्राण से है। हमारा प्राण अथवा स्वर कभी दाईं ओर कभी बाईं ओर तथा कभी दोनों ओर से समान रूप से चलता रहता है। हमारा स्वर विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार हमारे जीवन पर भिन्न-भिन्न प्रभाव डालता है। जो व्यक्ति स्वर का ज्ञान रखता है वह अपने जीवन में बड़े से बड़े कार्य को भी सिद्ध कर सकता है, क्योंकि मनुष्य का समस्त क्रिया-कलाप ब्रह्माण्ड पर ही आधारित है और मनुष्य के स्वर का सम्बन्ध भी ब्रह्माण्ड से ही जुड़ा हुआ है। इसी आधार पर स्वरज्ञानी किसी को भी

अपने वश में कर सकता है। वह किसी के भी प्रश्नों के उत्तर दे सकता है। आवश्यक यह नहीं कि दूसरों को अपने वश में किया जाए, अपितु आवश्यक है अपने आप को वश में करना। जिसने अपने आप को वश में कर लिया तो समझो उसने समस्त संसार को वश में कर लिया। यह भी आवश्यक नहीं कि हम दूसरों के प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं या नहीं, अपितु आवश्यक है कि हम अपने प्रश्नों के उत्तर जान सकते हैं या नहीं। अर्थात् जिसने यह जान लिया कि मैं कौन हूँ? परम-तत्त्व से मेरा क्या सम्बन्ध है? एवं मेरे जन्म का कारण क्या है तथा मेरा लक्ष्य क्या है? सृष्टि के आरम्भ से ही परम-तत्त्व को जानने के सतत् प्रयास किये गये। साथ ही मानव-दुःख को समाप्त करने के प्रयास भी किये गये। परन्तु न तो कोई किसी को परम-तत्त्व का दर्शन करवा सका, न ही मानव-दुख समाप्त हो सका। अपितु परम-तत्त्व को जानने के प्रयास के कारण ही अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों का जन्म हुआ और अज्ञान के कारण मनुष्यों में मतभेद बढ़ते गये। सुख और दुःख मानव-जीवन की सच्चाई है। परन्तु एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के दुःख का कारण न बने, तो यही उसके जीवन की सार्थकता है। हमारे शास्त्र हमे **जियो और जीने दो** का पाठ पढ़ाते हैं एवं **सर्वे भवन्तु सुखिनः** की बात करते हैं। परन्तु यह आत्मसंयम के बिना सम्भव नहीं और आत्मसंयम योग एवं प्राणायाम के बिना असम्भव है। स्वर-शास्त्र भी प्राणायाम एवं योग का मार्गदर्शन करता है तथा आत्मसंयम का पाठ पढ़ाता है। 'पवनविजय-स्वरोदय' शास्त्र में प्राण पर विजय प्राप्त करने का निर्देश किया गया है। साथ ही स्वर की पहचान, स्वर-पहचान का समय, प्रवाहित स्वर का प्रभाव एवं मुख्य रूप से प्राण के महत्त्व का वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक ओरिएण्टल अनुसन्धान एवं पब्लिकेशन्स विभाग कश्मीर, श्रीनगर की पाण्डुलिपि क्रमांक 235 एवं 265 पर आधारित है। ये दोनों

पाण्डुलिपियाँ देवनागरी लिपि में हैं। मेरे द्वारा देश के अन्य भागों से 'पवनविजय-स्वरोदय' की अन्य प्रतियाँ प्राप्त करने का प्रयास किया गया परन्तु कोई भी अन्य प्रति प्राप्त नहीं हो सकी। सर्वप्रथम जब मैंने इन पाण्डुलिपियों का अवलोकन ओरिएण्टल अनुसन्धान एवं पब्लिकेशन्स विभाग कश्मीर, श्रीनगर में किया और विषय को देखा, तो इनको प्रकाशित करने की इच्छा मन में प्रकट हुई। इसके पश्चात् पुस्तकालय के कर्मचारियों से अपने मन की इच्छा प्रकट की तो पता चला, कि पुस्कालय की किसी भी पाण्डुलिपि को विभागीय अध्यक्ष की अनुमति के बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता। तदनन्तर ओरिएण्टल अनुसन्धान एवं पब्लिकेशन्स विभाग कश्मीर, श्रीनगर की सहायक निदेशक से इस पाण्डुलिपि के प्रकाशन की बात की। तब उन्होंने भी बताया कि इस पुस्तकालय की किसी भी पाण्डुलिपि के प्रकाशन की अनुमति किसी को भी नहीं, इनके प्रकाशन का अधिकार केवल पुस्कालय को है। अतः तब मैंने जम्मू-कश्मीर पुस्कालय एवं अनुसन्धान के निदेशक महोदय से इस पाण्डुलिपि के प्रकाशन का लिखित आग्रह किया और संपादन के कार्य के लिए निशुल्क सेवा देने का प्रस्ताव रखा। इस प्रकार निदेशक की अनुमति प्राप्त होने के पश्चात् संपादन एवं अनुवाद का कार्य आरम्भ किया एवं दो वर्षों की अवधि में इस कार्य को पूर्ण कर सका। इस प्रकार अनेक प्रकार की प्रशासनिक वाधाओं का निवारण करने के पश्चात् प्रस्तुत पुस्तक पाठकों के समक्ष आ पाई है। प्रस्तुत पुस्तक जिन पाण्डुलिपियों पर आधारित है उनमें मूल संस्कृत पद्यों का अनुवाद भी उपलब्ध है। परन्तु अनुवाद शुद्ध हिन्दी में नहीं है अपितु उसमें पंजाबी आदि अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया गया है। अतः मैंने इस पुस्तक में अनुवाद में सुधार करके शुद्ध हिन्दी में व्याख्या करने का प्रयास किया है। विषय के महत्त्व को देखते हुए आशा है कि पुस्तक अवश्य मानव-भलाई के काम आएगी और पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

पुस्तक नौ अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में स्वरों की संख्या, स्वरों के महत्त्व एवं इनके निवास स्थान का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में पंचतत्त्वों का महत्त्व तथा तत्त्वों एवं स्वरों के मेल का प्राणी के व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है इस का वर्णन है। तृतीय अध्याय में युद्ध के फलादेश का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में वशीकरण के उपायों का निर्देश किया गया है। पंचम अध्याय में गर्भधारण एवं पैदा होने वाले बच्चे के व्यवहार का वर्णन किया गया है। षंष्ठ अध्याय में संवत्सर के फल के विषय में कहा गया है। सातवे अध्याय में स्वर को नियन्त्रित करने से किस प्रकार योगी रोगों से बच सकता है इसका निर्देश किया गया हैं। आठवें अध्याय में काल तथा मनुष्य से सम्बन्धित वर्णन है तथा नवम अध्याय में शरीर में विद्यमान नाड़ियों एवं उनके महत्त्व का वर्णन किया गया है।

परम आदरणीय गुरु प्रो. केदार नाथ शर्मा जी का आशीर्वाद एवं स्नेह सदैव मुझे प्राप्त होता रहा है। इस पुस्तक के लिए भी उन्होंने आशीर्वचन लिखकर मुझपर उपकार किया है। अतः मैं उनका सदैव ऋणी रहूँगा। पुस्तक के प्रकाशन के लिये ओरिएण्टल अनुसन्धान एवं पब्लिकेशन्स विभाग कश्मीर, श्रीनगर की सहायक–निदेशक जाहिदा जी ने पाण्डुलिपि की प्रति मुझे प्राप्त करवाई एवं समय–समय पर पुस्तक के प्रकाशन में मेरी सहायता की। अतः उनका भी मैं आभारी हूँ। ओरिएण्टल अनुसन्धान एवं पब्लिकेशन्स विभाग कश्मीर, श्रीनगर के कर्मचारी मोलबी साहब एवं अन्य कर्मचारियों का भी सहयोग मुझे प्राप्त होता रहा, अतः उनके प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूँ।

कर्तार चन्द शर्मा

पवनविजय-स्वरोदय

प्रस्तावना

पवनविजय का अर्थ है पवन अर्थात् प्राण पर विजय प्राप्त करना। प्राण समस्त सृष्टि का आधारभूत तत्त्व है। प्राण का सम्बन्ध शारीरिक ऊर्जा से है। इसी के द्वारा चेतन शरीर के कण-कण में ऊर्जा पहुँचती है। कश्मीर शैवदर्शन में इसी ऊर्जा को स्पन्द कहा गया है। स्पन्दन के आधार पर ही चेतनता को शिव-सूत्रों में आत्मा कहा है-**चैतन्यमात्मा।** चेतनता का यह समस्त चक्र प्राण अर्थात् प्राणवायु पर ही आधारित है। नाक के द्वारा हम जिस वायु को शरीर के अन्दर लेते हैं और फिर बाहर छोड़ते हैं, यही प्राणवायु कहलाती है। नाक के अन्दर दो नथुनें हैं, श्वास एवं प्रश्वास का मार्ग इन नथुनों से होकर ही गुजरता है। सामान्यतः मनुष्य को लगता है कि उसका श्वास-प्रश्वास दोनों नथुनों में चलता रहता है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। मनुष्य का श्वास-प्रश्वास कभी दायें नथुने से, कभी बाँयें नथुने से और कभी दोनों नथुनों से प्रवाहित होता है। इन्हीं तीन प्रकार के श्वास-प्रश्वास के प्रवाह को तीन प्रकार के स्वरों के रूप में जाना जाता है। ये तीनों प्रकार के स्वर अपने-अपने प्रवाहकाल में मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इस बात को हम इस प्रकार समझ सकते है- जैसे जब हम चल रहे होते हैं और जिस ओर जा रहे होते हैं यदि हवा भी उसी ओर चल रही हो, तो हमें चलने में सहायता मिलती है और यदि हवा प्रतिकूल दिशा की ओर चल रही हो तो हमें चलने में कठिनाई होती है। इसी प्रकार स्वर भी हमारे व्यवहार को प्रभावित करता है। अतः मनुष्य को स्वर-शास्त्र के निर्देशानुसार प्रभाहित स्वर की पहचान कर ही अपने कार्य करने चाहिए।

पवनविजय-स्वरोदय नवप्रकरणात्मक तन्त्र ग्रन्थ है। इसके नौ प्रकरणों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

स्वर प्रकरण-

इस प्रकरण में स्वरशास्त्र के महत्त्व का वर्णन है। स्वरशास्त्र को सभी शास्त्रों में सर्वोपरी माना गया है। स्वरशास्त्र के अनुसार तीन प्रकार के स्वरों का सम्बन्ध शरीर की प्रमुख तीन नाड़ियों से है। अर्थात् शरीर के वामभाग में स्थित इड़ानाड़ी का सम्बन्ध नाक के बायें नथुने में प्रवाहित होने वाले श्वास-प्रश्वास से है, शरीर में दक्षिणभाग में स्थित पिंगलानाड़ी का सम्बन्ध नाक के दायें नथुने में प्रवाहित होने वाले श्वास-प्रश्वास से है। एवं शरीर में इड़ा और पिंगलानाड़ी के मध्य स्थित सुषुम्नानाड़ी का सम्बन्ध नाक में दोनों नथुनों में प्रवाहित होने वाले श्वास-प्रश्वास से है। इसी प्रकार शरीर के अन्दर विद्यमान अन्य नाड़ियों का वर्णन भी इस प्रकरण में किया गया है। मानव शरीर में सर्वत्र नाड़ियों का जाल बिछा हुआ है। नाभि-केन्द्र से बहत्तर हजार नाड़ियाँ ऊपर की ओर अंकुर के समान निकलती हैं तथा समस्त शरीर में ऊपर से नीचे तक फैल जाती हैं। इन्ही नाड़ियों के मध्य में कुण्डलिनी-शक्ति का निवास है। दस नाड़ियाँ ऊपर की ओर और दस नाड़ियाँ नीचे की ओर गई हैं। हर ओर दो नाड़ियाँ कान की तरह तिरछी होती हैं। इस प्रकार मुख्य नाड़ियाँ चौबीस होती हैं। परन्तु दस वायुओं को प्रवाहित करनेवाली, इन में से दस नाड़ियाँ विशेष महत्त्व की होती हैं। ऊपर-नीचे के विपरीत कोणों से निकली ये नाड़ियाँ जब आपस में मिलती हैं, तो वहाँ इनका आकार चक्र की तरह होता है। इन सभी नाड़ियों में दस विशेष महत्त्व वाली होती हैं। इन दस में भी तीन- इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना सर्वाधिक महत्त्व वाली मानी जाती हैं। अन्य सात नाड़ियों के नाम गांधारी, हस्तजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलंबुषा, कुहु तथा शंखिनी हैं। शरीर में बायीं ओर इड़ा नाड़ी, दाहिनी ओर पिंगला

एवं मध्य में सुषुम्ना नाड़ी है। बायें नेत्र में गांधारी नाड़ी, दाहिनी आँख में हस्तजिह्वा, दाहिने कान में पूषा, बायें कान में यशस्विनी तथा मुख में अलंबुषा नाड़ी स्थित है। जननांगों में कुहु तथा गुदा में शंखिनी नाड़ी स्थित है। इसी प्रकार शरीर में दस प्राणवायु हैं, इनमें से पाँच– प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान मुख्य वायु हैं। एवं अन्य पाँच– नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त तथा धनंजय सहायक प्राणवायु हैं। प्राण का निवास स्थल हृदय है, अपान वायु शरीर के उत्सर्जक अंगों में रहता है, समान वायु नाभि–प्रदेश में स्थित होता है, उदान कंठ के मध्य में तथा व्यान समूचे शरीर में फैला होता है। नाग वायु के कारण डकार आती है, कूर्म से नेत्र झपकते हैं, कृकल से छींक तथा देवदत्त से जम्हाई आती है। मृत्योपरांत भी धनंजय वायु शव में व्याप्त रहता है।

इड़ा नाड़ी में चन्द्र, पिंगला में सूर्य तथा सुषुम्ना में शिव का वास होता है। जो साधक अभ्यास द्वारा सूर्य और चन्द्र नाड़ियों को संतुलित करता है, वह तीनों कालों के फल को जानने वाला होता है। पिंगला द्वारा प्राण और इड़ा द्वारा मन पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता है। जो साधक इस प्रक्रिया को जानता है, वह त्रिभुवन का स्वामी बनने की शक्ति रखता है।

तत्त्व–निर्णय प्रकरण–

संसार की प्रत्येक वस्तु के निर्माण में अथवा सृष्टि–निर्माण में पंचतत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि सृष्टि की रचना इन तत्त्वों द्वारा ही होती है तथा अन्त में उसका लय भी इन तत्त्वों में ही होता है। ऐसा योगी जिसने इन तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो। वह स्वरज्ञान के द्वारा तत्त्वों के कुप्रभावों को जान लेता है। अस्तित्व के प्रत्येक तल पर भूलोक से सत्यलोक तक किसी भी वस्तु का अस्तित्व ऐसा नहीं होता, जो पंचतत्त्वों से न बना हो,

परन्तु प्रत्येक तल पर नाड़ियों का भेद पृथक होता है। भगवान् शिव पार्वती को कहते हैं, कि स्वर में तत्त्वों का उदय क्रम से होता है। एवं तत्त्व-विज्ञान आठ प्रकार का होता है। प्रथम भाग में तत्त्वों की संख्या होती है, दूसरे में स्वर का मिलन, तीसरे में स्वर का संकेत तथा चौथे में स्वर का स्थान होता है। पाँचवे भाग में तत्त्वों का वर्ण, छठवें में प्राण, सातवें में स्वाद एवं आठवें में उनकी दिशा का वर्णन होता है। जल-तत्त्व का वर्ण सफेद, पृथ्वी-तत्त्व का पीला, अग्नि-तत्त्व का लाल, वायु-तत्त्व का नीला तथा आकाश-तत्त्व का वर्ण अनेक वर्णों का मिश्रण होता है। किस समय में कौन सा तत्त्व सक्रिय है इसको जानने के लिए दर्पण पर प्रश्वास छोड़िये, जल-वाष्प की जो आकृति बनेगी, वह सक्रिय तत्त्व के भेदों का संकेत देगी। पृथ्वी-तत्त्व का प्रवाह मध्य में, जल-तत्त्व का प्रवाह नीचे की ओर, अग्नि-तत्त्व का प्रवाह ऊपर की ओर और वायु-तत्त्व का प्रवाह एक कोण में होता है। जब दोनों स्वर एक साथ प्रवाहित हों, तो आकाश-तत्त्व को सक्रिय मानें। अब तत्त्व-स्थान की बात करते हैं- अग्नि-तत्त्व का वास दोनों कन्धों में, वायु-तत्त्व का नाभि में, पृथ्वी-तत्त्व का जंघाओं में, जल-तत्त्व का पैरों में तथा आकाश-तत्त्व का स्थान मस्तक में माना जाता है।

तत्त्वों के स्वाद का वर्णन इस प्रकार है- पृथ्वी-तत्त्व का स्वाद मीठा, जल-तत्त्व का कषाय, अग्नि-तत्त्व का कटु, वायु-तत्त्व का अम्लीय तथा आकाश-तत्त्व का तीक्ष्ण होता है। श्वास की गति का वर्णन इस प्रकार है- जब श्वास में वायु-तत्त्व प्रधान होता है, तो प्रश्वास की लंबाई आठ अंगुल होती है। इसी प्रकार, अग्नि-तत्त्व की प्रधानता में चार अंगुल, पृथ्वी-तत्त्व की प्रधानता में बारह अंगुल तथा जल-तत्त्व में प्रश्वास की लंबाई सोलह अंगुल होती है। जब प्रश्वास का प्रवाह ऊपर की ओर हो, तो मारण साधना की जा सकती है। इस साधना का उद्देश्य विरोधी की मृत्यु अथवा उसे कष्ट पहुँचाना होता है। जब प्रश्वास की गति नीचे की ओर हो, तो शान्तिपूर्ण; जब

तिरछी हो, तो उच्चाटन तथा जब मध्य की ओर हो, तो स्तंभन सम्बन्धी साधना की जा सकती है। परन्तु जब आकाश-तत्त्व प्रधान हो, तो वह सभी प्रकार के कार्यों के लिए अनुकूल होता है। पृथ्वी-तत्त्व के समय स्थिर प्रकृति के कार्य, जल-तत्त्व के समय अस्थायी गतिशील कार्य, अग्नि-तत्त्व के समय कठोर श्रम-साध्य कार्य, वायु-तत्त्व के समय मारण, उच्चाटन जैसे दूसरों को हानि पहुँचाने वाले कार्य किये जा सकते हैं। आकाश-तत्त्व की प्रधानता के समय किसी भी प्रकार के शुभ-अशुभ कार्य नहीं करने चाहिए। उस समय केवल थोड़ा योगाभ्यास करना चाहिए; क्योंकि आकाश-तत्त्व के समय कोई भी कार्य करने से निष्फल होता है। पृथ्वी-तत्त्व पीत वर्ण, धीमा तथा मध्य की ओर प्रभावित होता है। वह हल्का, उष्ण तथा ठोडी तक ध्वनि करने वाला होता है। जल-तत्त्व का रंग सफेद होता है, वह तीव्र प्रवाही तथा अधोगामी होता है और इसके प्रवाह में गहरी ध्वनि होती है। अग्नि-तत्त्व रक्त-वर्ण, उष्ण तथा घुमावदार होता है। वायु-तत्त्व नील-वर्ण, उष्ण, परन्तु ठन्डा रहता है। आकाश-तत्त्व में अन्य चारों तत्त्वों का संतुलन होता है। आकाश-तत्त्व का वर्ण पहचानना कठिन होता है। जल-तत्त्व की प्रधानता के समय में शत्रु आगमन, पृथ्वी-तत्त्व के समय विरोधी की पराजय, वायु-तत्त्व के समय शत्रु का पलायन तथा अग्नि-तत्त्व और आकाश-तत्त्व के समय हानि तथा मृत्यु की प्रबल संभावना होती है।

पंचतत्त्वों का मनुष्य के विचारों पर प्रभाव-

पृथ्वी-तत्त्व की प्रधानता में मन का झुकाव भौतिकता से सम्बन्धित विचारों की ओर होता है। जल-तत्त्व और वायु-तत्त्व की प्रधानता के समय स्वयं से सम्बन्धित विचार आते हैं। अग्नि-तत्त्व के समय धन एवं खजाने से सम्बन्धित विचारों की प्रधानता होती है। परन्तु आकाश-तत्त्व के समय विचार उत्पन्न ही नहीं होते।

दाहिने स्वर के प्रवाह में अग्नि-तत्त्व में मंगल, पृथ्वी-तत्त्व में सूर्य, जल-तत्त्व में शनि तथा वायु-तत्त्व में राहु का निवास होता है। इसी प्रकार, वामस्वर के प्रवाह में जल-तत्त्व में चन्द्र, पृथ्वी-तत्त्व में बुध, वायु-तत्त्व में वृहस्पति तथा अग्नि-तत्त्व में शुक्र का वास होता है। पृथ्वी-तत्त्व बुध के, जल-तत्त्व चन्द्रमा और शुक्र के; अग्नि-तत्त्व सूर्य और मंगल के, वायु-तत्त्व राहु और शनि के तथा आकाश-तत्त्व वृहस्पति के महत्त्व को प्रतिपादित करता है।

प्रश्नोत्तर में तत्त्वों की प्रधानता का योगदान-

यदि कोई व्यक्ति कहीं चला गया हो तथा दूसरा व्यक्ति उसके विषय में प्रश्न पूछता है, उस समय यदि जल-तत्त्व की प्रधानता हो, तो इसका तात्पर्य है कि गया हुआ व्यक्ति लौट आएगा। यदि प्रश्न के समय पृथ्वीतत्त्व की प्रधानता हो, तो गया हुआ व्यक्ति सकुशल है। वायु-तत्त्व की प्रधानता के समय पूछने पर गया हुआ व्यक्ति उस स्थान से कहीं और चला गया है। अग्नि-तत्त्व की प्रधानता में पूछने पर उत्तर होगा कि गया हुआ व्यक्ति इस संसार में नहीं है। यदि कोई प्रश्नकर्ता सक्रिय स्वर की दिशा से आये और प्रश्न करे, तो उसका उत्तर सकारात्मक होगा; परन्तु यदि वह निष्क्रिय स्वर की दिशा में आकर बैठ जाये, तो उसके प्रश्न का उत्तर नकारात्मक होगा। जब दोनों स्वर सक्रिय हों, तो शुभ तत्त्व भी निष्फल होते हैं। जब सूर्य-स्वर अथवा चन्द्र-स्वर प्रवाहित हो और यदि प्रश्नकर्ता सक्रिय स्वर की दिशा में बैठा हो, तो अवश्य ही प्रश्न का उत्तर फलदायक होगा।

तत्त्व-ज्ञान-

केवल गुरुकृपा प्राप्त पवित्र हृदय तथा पूर्वजन्मों के शुभ संस्कारों वाले लोगों को ही तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति होती है। पृथ्वी-तत्त्व का बीजमन्त्र लं है। व्यक्ति को स्वर्णवर्ण, तथा सुगन्ध और आलोक पर मन को एकाग्र करना चाहिए। इससे शरीर में फूल से भी अधिक

हल्केपन की सिद्धि प्राप्त होती है। जल-तत्त्व का बीजमन्त्र वं है। अर्द्धचन्द्र तथा जल-तत्त्व पर एकाग्रता के अभ्यास द्वारा भूक्ष-प्यास पर विजय मिलती है तथा साधक दीर्घकाल तक जल के भीतर रह सकता है। अग्नि-तत्त्व के बीजमन्त्र रं एवं रक्त-वर्ण त्रिभुजपर मन की एकाग्रता से साधक भोजन की प्रचुर मात्रा हजम कर सकता है तथा सूर्य के प्रचण्ड ताप और अग्नि का सामना कर सकता है। वायु-तत्त्व के बीजमन्त्र यं की साधना करने से साधक पक्षी की तरह हवा में विचरण कर सकता है। आकाश-तत्त्व का बीजमन्त्र हं निराकार होता है। इस पर एकाग्रता द्वारा त्रिकाल-ज्ञान उपलब्ध होता है।

शरीर में तत्त्वों की मात्रा-

शरीर में पचास भाग पृथ्वी-तत्त्व, चालीस भाग जल-तत्त्व, तीस भाग अग्नि-तत्त्व, बीस भाग वायु-तत्त्व और दस भाग आकाश-तत्त्व होता है।

नक्षत्र, राशियाँ तथा तत्त्वों का सम्बन्ध-

पृथ्वी-तत्त्व का सम्बन्ध इन नक्षत्रों से है- धनिष्ठा, का मकर राशि के चार तारों से; रोहिणी नक्षत्र का वृषराशि के सर्वाधिक चमकदार तारे से; ज्येष्ठा नक्षत्र का वृश्चिक के तीन तारों से; अनुराधा नक्षत्र का वृश्चिक के तीन तारों से; श्रावण का मकर राशि के तीन तारों से; अभिजित् तथा उत्तराषाढ़ का धनुराशि के उत्तरी तारे से होता है। जल-तत्त्व का सम्बन्ध- पूर्वाषाढ़, श्लेषा, मूल, रेवती, उत्तराभाद्रपद एवं शतभिषा नक्षत्र से होता है। अग्नि-तत्त्व से सम्बन्धित नक्षत्र- भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद एवं स्वाति हैं। वायु-तत्त्व से सम्बन्धित नक्षत्र हैं- विशाखा, उत्तराफालगुणी, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी तथा मृगषिरा।

प्राण का महत्त्व-

पार्वती के प्रश्न करने पर कि जीव का सबसे बड़ा मित्र कौन है? एवं ऐसा क्या है? जिससे व्यक्ति की

समस्त इच्छायें पूरी होती हैं। भगवान् शिव द्वारा पार्वती के प्रश्न के उत्तर में प्राण के महत्त्व का वर्णन इस प्रकार किया गया है– प्राण जीव का सबसे बड़ा मित्र होता है, उसके अतिरिक्त विश्व में अन्य मित्र नहीं। शरीर में प्राण-वायु एक पहरेदार की तरह रहता है। शरीर में श्वास के रूप में उसकी लंबाई दस अंगुल तथा प्रश्वास के रूप में शरीर से बाहर निकलते समय उसकी लंबाई बारह अंगुल होती है। जब व्यक्ति चलता-फिरता है, तो प्राण की लंबाई चौबीस अंगुल, दौड़ते समय बयालीस अंगुल, संभोग के समय पैंसठ तथा निद्रावस्था में एक सौ अंगुल होती है। यदि प्राण की लंबाई एक अंगुल घट जाय, तो व्यक्ति निष्काम; दो अंगुल घट जाय, तो आनन्दित तथा तीन अंगुल घट जांय, तो वह लेखक बन जाता है। चार अंगुल घट जाय, तो वाक्सिद्धि, पाँच अंगुल घटने पर दूरदृष्टि, छः अंगुल घटने पर भूमि-त्याग तथा सात अंगुल घटने पर व्यक्ति प्रचण्ड वेगगामी होता है। प्राण की लंबाई आठ अंगुल कम होने पर अष्टसिद्धियों की प्राप्ति होती है, नौ अंगुल कम होने पर नौ सिद्धियाँ, दस अंगुल कम होने पर शरीर को दस आकारों में बदलने की क्षमता तथा ग्यारह अंगुल कम हो जाने पर शरीर छाया-रहित हो जाता है। प्राण की लंबाई यदि बारह अंगुल घट जाय, तो व्यक्ति अमृतपायी हंस की तरह अमर हो जाता है। जो योगी अपने प्राणों को नियन्त्रित कर लेता है, उसे भुख-प्यास तथा वासनाओं से मुक्ति प्राप्त होती है।

युद्ध प्रकरण–

दूर के युद्ध में चन्द्रनाड़ी शुभ है और पास के युद्ध में सूर्यनाड़ी शुभ है। जिस पासे की नाड़ी वहती हो उसी पासे का पाँव आगे चलाए तो हर कार्य में सिद्धि प्राप्त हो। सभी शुभकार्यों में, यात्रा में, शुभकर्म के आरम्भ में, विवाह में, गृहप्रवेश में और नगर प्रवेश में चन्द्र नाड़ी वहती हो तो शुभ है। दक्षिणायन तथा उत्तरायण, तिथि एवं वार कदाचित् दैवयोग से जल-तत्त्व और पृथ्वी-तत्त्व

से युक्त हों, अपने तत्त्व में वहते हों तो पुरुष को ज़ीत प्राप्त हो। वह पुरुष उस स्वर को बन्द करने से सभी शत्रु सेजा जीतेगा, यदि उसके आगे नारायण भी आ जाए तो भी उसके कार्य में कोई विघ्न न डाल सके। स्वर का अभ्यास करने वाला जीव की रक्षा करता है, जीव के अंग का स्वर बन्द करके युद्ध में जीव स्वर-बल से सारी पृथ्वी को जीतेगा। इसमें सन्देह नही। भूमि-तत्त्व और जल-तत्त्व की प्रधानता में यात्रा को जाए और शान्ति-कर्म करे। अग्नि-तत्त्व तथा वायु-तत्त्व प्रधानता में क्रूर कर्म करने का योग है, आकाश-तत्त्व में शान्ति-कर्म और क्रूर-कर्म दोनों ही नहीं करने चाहिए। प्रवाहित स्वर से शत्रुओं को बाँधे, प्रवाहित स्वर की ओर से ही शस्त्र को निकाले और प्रवाहित स्वर की ओर से ही शस्त्र को चलाए, तब युद्ध में सब प्रकार से जीत प्राप्त करे। प्राणरूपी जो पवन है उसको खींच कर और वश में कर पहले चन्द्रनाड़ी की ओर वाले पाँव को चलाए, तो सभी कार्य सिद्ध होते हैं। जिस ओर स्वर खाली हो उस ओर शत्रु के प्रहार को सहन करे, पूर्ण भाग में अपनी सेना में पृथ्वी-तत्त्व में स्थित होकर युद्ध करे तो पृथ्वी को जीतेगा। जिस अंग की नाड़ी वहती हो, उस देवता की पूजा कर चले, तो सन्मुख समय अच्छा न भी हो तब भी सभी कार्य सिद्ध फल दें। पहले मुद्रा-अभ्यास करे पीछे युद्ध करे, जिसने सर्प की भान्ति मुद्रा करी और युद्ध को गया उसको सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें संशय नहीं। चन्द्रस्वर के प्रवाह में अथवा सूर्यस्वर के प्रवाह में जब युद्ध की इच्छा वाला जोधा युद्ध को चले, तब 'वायुयप' प्राण को जानकर उसी को बन्द कर चले तो जय हो, शून्य भाग के समय में यदि कोई युद्ध के लिए निकले तो उसको कालरूपी मृत्यु ग्रासं करेगा, ऐसा कहा गया है। जिस दिशा की ओर वायु वहने वाला हो उसी दिशा की ओर युद्ध को जाए, तो अवश्य जीतेगा, साक्षात् इन्द्र भी आगे आए उसको भी जीतेगा। इसमें संशय नहीं। जिस नाड़ी में वायु वहता हो, उसी पासे का प्राण कान पर्यन्त खींच करके चला जाए, तब इन्द्र को भी जीतेगा।

इसमें कुछ संशय न करे। शत्रु के प्रहार से पूर्ण वहते अंग की जो रक्षा करे और शून्य अंग भाग में प्रहार को ले, उसको मारने में समर्थ कदाचित् बलवान भी न हो। अंगुष्ठ तथा तर्जनी अंगुली से अथवा पाँव के अंगुष्ठ को ठोक कर रास्ता चले फिर युद्ध को जाए, तब तो लाख योधाओं को भी जीतेगा। जब कभी चन्द्र और सूर्यनाड़ी के मध्य जिसका वायु वहता हो, वह जय को चाहने वाला सदा अपनी स्वरवाली दिशा की रक्षा करता हुआ स्थित हो। श्वास जिस ओर चल रहा हो प्रश्न पूछने वाला उस पासे बैठकर पूछे तो वांछित कार्य की सिद्धि तुरन्त हो और यदि प्रश्न पूछने वाला रिक्त स्वर की ओर बैठकर पूछे, तो उसकी निश्चित रूप से हानि हो। अर्थ-प्राप्ति आदि के जितने कार्य हैं, वे श्वास के प्रवेश के समय में पूछे गये हों, तो सिद्ध होते हैं और श्वास के छोड़ते समय यदि पूछे गये हों, तो सिद्ध नहीं होते। युद्ध को जाते समय अपनी स्त्री का वामास्वर हो और अपना दायाँ स्वर हो, तो भी शुभ जानना चाहिए। युद्ध के समय में कुम्भक करता हुआ युद्ध करे तो शुभ होता है। इसी प्रकार तीन प्रकार की नाड़ी और तीन प्रकार की गति जाननी चाहिए। हकार और सकार के भेद बिना स्वरज्ञान के संग हो, **सोऽहं** (अर्थात् मैं शिव हूँ) जो यह हंस पद है इसके कारण सदैव जीव जय को प्राप्त करता है। शिव जी कहते हैं! हे देवी शून्य अंग को आगे करके स्वर वाले भाग की जो रक्षा करे उसको घात न लगे। स्वर वाला भाग घात कराता है, शून्य भाग रक्षा करता है। पूछने वाला दूत वामभाग में बैठे अथवा दायें भाग बैठे, पूर्ण स्वर में घात नहीं हो, शून्य भाग की ओर बैठ कर पूछे तो घात करे। पूछने वाला शून्य भाग की ओर बैठ कर प्रश्न करे और पृथ्वी-तत्त्व चलता हो, तो पेट में घात हो, जल तत्त्व चलता हो, तो पाँव में घात करे, अग्नि-तत्त्व चलता हो, तो जंघा में घात हो और वायु-तत्त्व चलता हो, तो हाथों में घात हो। आकाश-तत्त्व की प्रधानता में सिर को चोट लगे, इस प्रकार घात का निर्णय जानने योग्य है। इस प्रकार स्वरशास्त्र में इन पाँच

प्रकार के घात का प्रकाश किया है। यदि दोनों युद्ध वाले पुरुष प्रश्न करें, तो पूर्णस्वर वाले भाग में बैठे हुए की पहले जय हो। शून्यस्वर की ओर बैठे हुए की दूसरी बार जय हो अन्यथा अन्य प्रकार से जय न हो। पूर्णस्वर की नाड़ी वाला पीछे रहे और शून्य अंग की नाड़ी वाला भाग शत्रु के आगे करे, इस प्रकार शत्रु को शून्य स्थान की ओर करे, तो शत्रू की मृत्यु होगी ऐसा जानना चाहिए। वामास्वर वहते प्रश्न पूछने वाला पूछे, जिसका नाम-अक्षर सम हो, तब तो तुरन्त जय हो। दायाँ-स्वर वहते प्रश्न पूछने वाले का नाम-अक्षर विषम हो, तब तो तुरन्त जय हो। इससे उलटा हो तब हानि जाननी चाहिए। युद्ध होगा या नहीं होगा, इस प्रश्न को पूछने वाला चन्द्रभाग में स्थित होकर पूछे, तो युद्ध नहीं होगा। सूर्य-स्वर में स्थित होकर पूछे, तो युद्ध होगा ऐसा जानना चाहिए। पृथ्वी-तत्त्व चलते पूछे ते सम युद्ध हो, जल-तत्त्व चलते पूछे ते सिद्धि हो, तेज-तत्त्व चलते पूछे तो भंग हो, वायु अथवा आकाश-तत्त्व चलते पूछे तो मृत्यु हो। मन को सावधान करके निश्चल धारणा रख के पुष्प को हाथ से ऊपर को फैंके, जिस ओर पुष्प गिरे वैसा फल कहे। पूर्णांग की ओर गिरे तो शुभ फल दे, शून्यभाग की ओर गिरे तो शून्य फल कहे। खड़े, उठते अथवा बैठते अपने मन को प्राण के वश रखे और एकाग्रता से श्वास ले, तो सभी कार्यों में सिद्धि प्राप्त करे। स्वर की युक्ति से वायु को स्थापन करे और स्वर के बल से कार्य का आरम्भ करे, स्वर के बल से जुआ खेले, तो सदा जीत हो। स्वरज्ञान के बल के आगे अन्य सभी उपाय निस्फल हैं। इसलोक एवं परलोक में भी स्वरज्ञान वाला सदा बली है। किसी देश का राजा लाखों सैना वाला भी हो, एवं देवों का राजा इन्द्र करोड़ गुणा सेना वाला भी हो, तो भी स्वरज्ञानी बली रहेगा। पार्वती जी प्रश्न करती हैं, कि हे शिव जी! मनुष्यों के आपस में युद्ध होने पर स्वर के बल वाला इन्द्र को भी जीतेगा। परन्तु यदि यमराज के साथ युद्ध होगा, तो किस प्रकार जीत प्राप्त करेगा? शिव जी उत्तर देते हुए कहते हैं, कि जो स्थिर मन करके श्री

ईश्वर का ध्यान करे और प्राणायाम के बल से प्राण को सुषुम्ना के द्वारा ब्रह्माण्ड को चढावे अर्थात् रोके तो उसकी इच्छा की सिद्धि होती है और उसको महालाभ एवं जय की प्राप्ति होती है। हे देवी! निराकार ब्रह्म से सारे प्रपंच वाला दृश्य जगत् उत्पन्न होता है, वही दृश्य रूप सारा जगत् निराकार ब्रह्म में लीन हो जाता है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। अतः यम कहाँ उस तक पहुँचेगा।

वशीकरण प्रकरण–

इस प्रकरण में श्री देवी जी भगवान् शिव से वशीकरण के उपायों का वर्णन करने को इस प्रकार कहती है– हे देवों के देव आपने मनुष्यों का युद्ध और यम का युद्ध विस्तार से सुनाया अब वशीकरण के उपाय कृपा करके कहो। शिव जी देवी को कहते हैं– हे देवी! स्त्री के चन्द्रस्वर को पुरुष सूर्यनाड़ी के द्वारा खींचता हुआ प्राणायाम के बल से अपने प्राण में स्थापित करे, तो वह स्त्री जीवन भर उस के वश में रहेगी। तपस्वियों ने ऐसा कहा है। प्राण के द्वारा प्राणवायु को ग्रहण किया जाता है, पुरुष अपने प्राण को जिस स्त्री के प्राण के साथ मिलाता है वह सत्री उसके वश में हो जाती है। रात्रि के अन्तिम प्रहर में जब कामिनी स्त्री सो रही हो, उस समय जो पुरुष उसके ब्रह्मजीव (प्राण) को अपने श्वास द्वारा अपने भीतर स्थापित करे, तो वह उस स्त्री को अपने वश में कर सकता है। यदि कोई पुरुष अष्टाक्षर मन्त्र के जप के उपरान्त चन्द्र-स्वर को कामातुर स्त्री के भीतर स्थापित करे, तो वह वश में आए अथवा मोहित हो जाए। स्त्री के साथ सोने के समय अथवा भोग के समय अथवा स्त्री के साथ गले लगने के समय जो पुरुष सूर्यनाड़ी के द्वारा स्त्री के चन्द्रस्वर को ग्रहण करे तो वह स्त्री उसके वश में हो जाए। शिवरूप जो सूर्य है उसको शक्तिरूप चन्द्रमा के साथ मिलाकर और चन्द्रमा को सूर्य के साथ मिलाकर, जो पुरुष स्त्री के गले लगे अथवा भोग करे वह पुरुष सैकड़ों कामिनियों को मोहे। यदि सूर्य-स्वर के

प्रवाह काल में किसी पुरुष का महिला के साथ तीन, पाँच, सात अथवा नौ बार संयोग हो अथवा चन्द्र-स्वर के प्रवाह काल में दो, चार अथवा छः बार संयोग हो वह स्त्री उस पुरुष के प्रति आकर्षित होकर सदैव उसके वश में रहती है। सूर्य-स्वर और चन्द्र-स्वर को खींच करके सूर्य की भान्ति महाकमल रूप अधरोष्ट पर हाथ रखकर एक हाथ से अपने मुख का स्पर्श करता हुआ, इस प्रकार बार बार आचरण करे। सूर्यस्वर को बन्द कर चन्द्रस्वर को सूंघे जब तक थोड़ी निद्रा पड़े तब तक ऐसा करता हुआ, जब जागकर उठे, उस समय नायिका के गले और नेत्रों को चूमे तो उसीक्षण वह स्त्री वश में हो जाए। योगी जन यदि गले और नेत्रों पर हाथ फेरें और हाथ को मुख से चूमे, तो माया को वश में करें। इस प्रकार इस विधि के द्वारा कामी पुरुष कामिनियों को वश में करे। इस बात का वर्णन और किसी से नहीं करना चाहिए यह ,मेरी आज्ञा है अर्थात् इस शास्त्र को गोपनीय ही रखना चाहिए, नहीं तो इसका दुरोपयोग हो सकता है।

गर्भ प्रकरण-

जो पुरुष अपने सूर्य-स्वर को पत्नी की सुषुम्ना के प्रवाह-काल में स्थापित करते हुए संभोग करता है, उसको अंगहीन पुत्र पैदा होगा और कृष्ण शरीर वाला होगा। ऋतु-स्नान के पश्चात् विषम काल वाला दिन एवं रात हो, विषम काल वाला वार हो स्त्री की चन्द्रनाड़ी और पुरुष की सूर्यनाड़ी वहती हो अग्नि-तत्त्व में भोग करे तो वंध्या स्त्री भी पुत्र उत्पन्न करे। ऋतुकाल के समय पुरुष का सूर्य-प्रवाह हो और स्त्री का चन्द्र-प्रवाह हो इस प्रकार उस समय सम्भोग करने से वंध्या भी पुत्र को उत्पन्न करे। ऋतुकाल के आरम्भ में पुरुषों का सूर्य-स्वर प्रवाहित हो और अन्त में चन्द्रमा वहे, तो ऐसे भोग के द्वारा गर्भ-स्थापन नहीं होता। जब कोई पुत्र अथवा कन्या का प्रश्न पूछे, उस समय अपनी चन्द्रनाड़ी वहती हो, तब कन्या उत्पन्न हो, सूर्यनाड़ी वहती हो, तो पुत्र उत्पन्न

होगा, दोनों एक साथ वहती हों, तो तब गर्भ नष्ट होगा। प्रश्न पूछने वाला सक्रिय चन्द्रनाड़ी की ओर बैठकर प्रश्न पूछे, तो कन्या जान। सूर्यनाड़ी की ओर बैठकर पूछे तो पुत्र कहे, स्वर मध्य भाग में हो और सुषुम्ना सक्रिय हो, तो नपुंसक कहे। प्रश्न पूछने वाले का स्वर और कहने वाले का पूर्णस्वर एक ही ओर हो, तो पूर्ण गुणों वाला पुत्र उत्पन्न हो। पृथ्वी-तत्त्व में पुत्र उत्पन्न हो, वायु-तत्त्व में कन्या, तेज-तत्त्व में गर्भ नष्ट हो, आकाश-तत्त्व में नपुंसक हो। हे देवी! शून्यभाग में प्रश्न करे तो शून्य जान और युग्म तत्त्व चलते हों, तब तो युगल उत्पन्न होगा और तत्त्व के मिलन के समय प्रश्न करे तो गर्वपात हो। सूर्य के प्रवाह में पूर्णभाग में पुत्र हो, चन्द्र के प्रवाह में पूर्णभाग में कन्या का जन्म हो। विषम एवं सुषुम्ना के समय में प्रश्न किया हो तो गर्भपात हो। परन्तु हे पार्वती तत्त्व के जानने वाले पुरुष ही इसको जान सकते हैं अज्ञानी इसे क्या समझेगा। वायु-तत्त्व चलते गर्भधारण हो तो जातक दुःखी हो और क्रूर दशा के फल को भोगेगा, जल-तत्त्व में गर्भधारण हो तो जातक सुखी होगा, आकाश-तत्त्व में गर्भ नहीं ठहरेगा, अग्नि-तत्त्व में अच्छी आयु वाला होगा और पृथ्वी-तत्त्व के चलते भोगी, कल्याणवाला और धनवान हो। जल-तत्त्व में गर्भ का जीव धनवान और सुखी हो, आकाश-तत्त्व के चलते गर्भ का जीव नष्ट हो जाए। पृथ्वी-तत्त्व चलते सुन्दर पुत्र की उत्पत्ति हो, जल-तत्त्व में उत्पन्न जातक दुःखी हो अन्य तत्त्वों में गर्भ नष्ट हो अथवा पैदा होते ही मृत्यु हो। सूर्यनाड़ी के मध्य चन्द्रमा और चन्द्रनाड़ी के मध्य सूर्य हो, तो गुरु के मुख से शीघ्र जानने योग्य हो, अन्यथा करोड़ों शास्त्रों द्वारा भी न जाने।

संवत्सर प्रकरण–

स्वरज्ञानी चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा वाले दिन प्रातः काल उठ कर तत्त्वभेद को देखे और इसी प्रकार दक्षिणायण और उत्तरायण के समय भी तत्त्व के

भेद पर विचार करे। उस समय यदि चन्द्रनाड़ी प्रवाहित हो और पाँचों तत्त्वों का निरीक्षण करे यदि उस समय पृथिवी-तत्त्व, जल-तत्त्व अथवा वायु-तत्त्व चले, तो सभी प्रकार के अन्न सस्ते हों ऐसा जाने। तेज-तत्त्व अथवा आकाश-तत्त्व प्रधान हो, तो आगामी वर्ष में बड़े चोर, भय, उपद्रव और बड़ा अकाल होगा। इस प्रकार तत्त्व के प्रमाण से सारे वर्ष का फल चैत्र शुक्ल पक्ष को देखे और मास का फल संक्रांति को देखे, दिन का प्रातः काल उठकर देखे। यदि उस समय सुषुम्ना प्रधान हो, तो क्रूर एवं सभी कर्मों में दुष्ट फल देने वाली है, देश भंग करे, भारी रोगों को उत्पन्न करे, क्लेश एवं दुःखों को दे। जो पुरुष लोक-चिन्तन करने वाला हो, वैशाखी के दिन संक्रांत प्रवेश होने के समय स्वर का भेद विचारे। उसके अनुसार सारे वर्ष का फल कहे । पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्वों के द्वारा दिन, महीने एवं वर्ष का फल पृथ्वी-तत्त्व और जल-तत्त्व की प्रधानता में शुभ एवं आकाश-तत्त्व, वायु-तत्त्व और अग्नि-तत्त्व में दुष्ट फल जानना चाहिए। मेष-संक्रांति के समय पृथ्वी-तत्त्व की प्रधानता हो, तो अच्छा समय हो और राज्य में वृद्धि हो, पृथ्वी अनेक अन्नों से परिपूर्ण हो और वर्षा अधिक हो सब ओर सुख हो। मेष-संक्रांति के समय जल-तत्त्व की प्रधानता हो, तो जाने अति बृष्टि होगी और अच्छा समय होगा लोक निरोग रहेंगे, पृथ्वी अन्नों से परिपूर्ण होगी, सभी ओर सुख होगा। उस समय यदि अग्नि-तत्त्व चले, तो जाने अकाल पड़े, राज्य भंग हो, भयानक रोग उत्पन्न हों, थोड़ी वर्षा भी न हो। मेष-संक्रांति के समय यदि वायु-तत्त्व की प्रधानता हो, तो जानना उपद्रव हों, उत्पात हो, बड़ा भय हो, वर्षा थोड़ी हो और रात्रियाँ शीतल हों। मेष-संक्रांति के समय यदि अकाश-तत्त्व की प्रधानता हो, तो भी सभी अन्नों और सुखों की शून्यता जाननी चाहिए। पूर्णश्वास के प्रवेश में सभी तत्त्व सिद्धि देतें हैं। कदाचित् सूर्य और चन्द्रस्वर विपरीत स्वभाव से चलें, तब अन्नादि की खरीद हो और सभी ओर सिद्धि हो। मेष-संक्रांति के समय विषम समय में यदि सुषुम्ना चले, और

अग्नि-तत्त्व अथवा आकाश-तत्त्व चले, तब अधिक अन्न का भण्डार करना चाहिए क्योंकि दो महीने के बाद अन्न अधिक मंहगा हो। सूर्य-संक्रांति के समय सूर्य-नाड़ी गले के अन्त तक चली जाती है उस समय भी आकाश-तत्त्व, वायु-तत्त्व अथवा अग्नि-तत्त्व चले, तो संसार में बड़ा भय रहता है।

रोग प्रकरण–

रोगी के प्रश्न पूछने के समय यदि पृथ्वी-तत्त्व सक्रिय हो, तो कर्म-रोग मानना चाहिए; यदि जल-तत्त्व सक्रिय हो, तो जलमातृका दोष जाने; अग्नि-तत्त्व की प्रधानता हो, तो ग्रहों का दुःख जाने; आकाश-तत्त्व एवं वायु-तत्त्व में शाकिनी दोष अथवा पितृ दोष से रोग जाने और उन्हीं का उपाय करे। प्रश्न पूछने वाला पहले अप्रवाहित स्वर की ओर बैठे और फिर प्रवाहित स्वर की ओर बैठे, तो जो रोगी है, जिसका प्रश्न पूछता हो मूर्छित हुआ भी जीवित रहेगा। प्रश्न पूछने वाला वहते स्वर की ओर बैठा हुआ प्रश्न पूछे तब उस जीव की दीर्घ आयु होगी। परन्तु बड़े रोगों से पीड़ित रहेगा। हे देवी! वायु दक्षिण वहता हो और पूछने वाला भी आकर बैठकर दुःख भय के साथ कहे, तो वह रोगी जीवित रहेगा। उस समय यदि चन्द्र-नाड़ी वहती हो, तो रोगी चिरकाल तक दुःख भोगकर भी जिन्दा रहेगा। प्रश्नकर्ता के स्वर के आकार को धारण करके, स्वर के आकार को देखकर, यदि पूछने वाले का भी स्वर ठिकाने स्थित हो, तो उसको जीवित रहने का फल कहे। हे देवी! वामभाग के स्वर के समय दाँय बैठकर प्रश्न पूछे, और फिर यदि स्वर भी दाँय वहने लगे, उस स्थिति में उसी समय प्रश्नकर्ता की सिद्धि हो। प्रश्न के समय में स्वर नीचे चले निश्चित रूप से जिसका प्रश्न है, वह जीवित रहेगा और प्रश्न के समय में स्वर ऊँचा वहे जिस रोगी का प्रश्न हो उसका यमलोक में वास हो। जो पुरुष प्रश्न पूछने के समय ऐसे उलटे अक्षरों से पूछे और रिक्तभाग में वैद्य भी उलट-पलट फल

जाने, यदि उस समय सुषुम्ना चलती हो। चन्द्र नाड़ी का स्वर वहता हो प्रश्न पुछने वाला सूर्य-नाड़ी की ओर बैठकर पूछे, तब रोगी प्राणों को छोड़ेगा, सैंकड़ों वैद्य चिकित्सा करे तो भी रोगी की मृत्यु होगी। सूर्य-नाड़ी का स्वर चलता हो प्रश्न पूछने वाला वामभाग में बैठकर पूछे; तो भी रोगी की मृत्यु होगी। उसकी रक्षा साक्षात् शिव भी करे तो भी मृत्यु अवश्य होगी। इस संसार में प्रश्न देखने वाले और रोगी पुरुषों का पँचभूतों में से एक भूत के भी उलटा चलने से अथवा बन्द होने से रोंगों की प्राप्ति होती है। जैसे चलता था पृथ्वी-तत्त्व परन्तु उसके स्थान पर जल-तत्त्व चल पड़ा तब दोनों के बन्धु, सज्जन अथवा मित्र दूर हों और एक महीने के बाद मृत्यु हो।

काल प्रकरण–

प्रस्तुत प्रकरण में काल-ज्ञान का वर्णन है। शिव पार्वती से कहते हैं- हे पार्वती! तू श्रवण कर क्रमानुसार विद्वानों को वायु के वश रहते हुए अर्थात् अपने प्राण को स्थिर करके पक्ष के आदि में, मास के आदि में एवं वर्ष के आदि में तत्त्व की जाँच करनी चाहिए। मृत्यु का समय पास आने पर भी तत्त्व की जाँच करनी चाहिए। यह देह पँचभूतों के बने हुए दीपक के समान जानने योग्य है, चन्द्रमा और सूर्य-स्वर रूपी जिसमें तेल है, वह उस दीपक की प्राण द्वारा रक्षा करे। इस प्रकार दृष्टांत करके जीव स्थित होता है। प्राणायाम से वायु को रोकता हुआ जब सूर्य प्रवाह चलता रहे, ऐसे अभ्यास से सूर्य-स्वर को जीव रखे, जब काल आए तब सूर्य प्रवाह को भी बन्द करे। इस प्रकार काल को जीतता है। ब्रह्मारूप आकाश से चन्द्रमा अमृत स्रवता है, जिसके कारणे देहरूपी कमलों का सिंचन होता है। यह तो प्राणायाम-रूपी कर्म अभ्यास है, जिसके करने से चन्द्रमा के अमृतों से देवता रूप हो जाए। रात्री में चन्द्र-स्वर को रोके दिन को चलाये, सूर्य-स्वर को दिन में रोके रात्री को चलाये, इस अभ्यास में जो नित्य तत्पर रहे वह योगी कहलाता है। इसमें

संशय नहीं। कदाचित् एक स्वर में प्राणवायु रात और दिन लगादार प्रवाहित रहे, तब जानना चाहिए कि उसकी आयु तीन वर्ष तक रहेगी। दो रात और दिन जिस पुरुष का प्राणवायु लगातार एक स्वर में प्रवाहित रहे, तो उस पुरुष की दो वर्ष आयुषा जाने, तत्त्व जानने वाले ने ऐसा कहा है। तीन रात और दिन जिस पुरुष का वायु एक ओर वहे, वह पुरुष केवल एक वर्ष तक ही जीवित रहेगा। ऐसा बुद्धिमान तत्त्व जानने वाले कहते हैं। जिसका रात में चन्द्रस्वर वहे और दिन को सूर्यस्वर वहे ऐसा निरंतर चलता रहे, तो उस पुरुष की छः महीने आयु जानें। एक दिन से लेकर सोलह दिन पर्यन्त जब सूर्य–नाड़ी एक भाग में वहे तो पक्ष में मृत्यु हो। कुछ दिन सोलह से कम हों तो उतने महीने पीछे मरेगा। जिस पुरुष को सम्पूर्ण सूर्यस्वर वहे और चन्द्रस्वर दिखाई न दे, उसकी एक पक्ष आयुषा जानें। काल को जानने वाले ने ऐसा कहा है। जिसको सम्पूर्ण चन्द्रस्वर वहे और सूर्यस्वर दिखाई न दे, उसकी महीने पीछे मृत्यु हो। काल को जानने वाले ने ऐसा कहा है। जो पुरुष विष्ठा, मूत्र और अपान वायु एक साथ छोड़े तब तो जानना चाहिए कि चलायमान होता हुआ दस दिन में अवश्य मरेगा। जो पुरुष अरुंधती, ध्रुवतारा और आकाश इन तीनो को और चौथे मातृ–मण्डल को न देख सके, तो समझिये वह व्यक्ति आयुष्यहीन हो गया है। जिस पुरुष को झवां दिखाई न दे तो जानें नौ दिन में मृत्यु हो, मुख दिखाई न दे तो सात दिन में मृत्यु हो, आँख की पुतली दिखाई न दे तो पाँच दिन में मृत्यु हो, नाक दिखाई न दे तो तीन दिन में मृत्यु हो, जिह्वा दिखाई न दे तो एक दिन में ही अवश्य मृत्यु होगी। आँख के कोण को अंगुली द्वारा कुछ थोड़ा पीडित करे जब अश्रु का बिन्दु नहीं निकले, तो जाने दस–बीस दिन में अवश्य मृत्यु हो।

नाड़ी प्रकरण–

मनुष्य के शरीर में तीन प्रमुख नाड़ियों अर्थात् इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना को इस प्रकार जानना चाहिए– इड़ा–नाड़ी गंगा के समान जानने योग्य है, पिंगला यमुना नदी जाननी चाहिए, इनके मध्य सुषुम्ना को सरस्वती के रूप में जानना चाहिए। इनके संगम स्थान को त्रिवेणी (प्रयाग) तीर्थ जानना चाहिए। शीघ्रता से प्रतीति करवाने वाला पहला साधन जो कहा है वह है योगी जन पद्मासन बाँध कर पवन को बाँधे अर्थात् प्राणायाम करे। योगियों के लिए सिद्धि प्राप्त करने के लिए प्राणायाम के तीन अंग महत्त्वपूर्ण हैं– पूरक (श्वास को अन्दर लेना), कुम्भक (श्वास को अन्दर रोकना) तथा रेचक (अन्दर से श्वास को बाहर निकालना)। ये तीनों जानने योग्य हैं। पूरक देह की पुष्टि करे, देह की धातुओं को समान करता है। कुम्भक वीर्य का स्तंभन करता है, एवं जीव रक्षा में वृद्धि करता है। रेचक पापों को दूर करता है। इस प्रकार ध्यान करने वाला योगी योगपद को प्राप्त होता है और युद्ध के समय पीछे खड़ा होकर सारी इन्द्रियों को लय करके प्राणायाम के बल से लयबंध मुद्रा करे तो अवश्य सफल होता है। रेचक से शरीर की अशुद्धियाँ दूर होती हैं। जो योगीश्वर चन्द्रमा को सूर्य से पीता है और सूर्य को चन्द्रमा से पीता है अर्थात् जो अनुलोम–विलोम श्वसन का अभ्यास करता है। ऐसा योगी परस्पर समय की भावना करे, तब तक जियेगा जब तक सूर्य, चन्द्रमा और तारे रहेंगे। योगी को अपने अंग में वहती नाड़ी को रोककर मुख बन्द कर अंतरंग कुम्भक करना चाहिए। इससे वृद्ध व्यक्ति भी पुनः युवा हो सकता है। मुख, नासिका, नेत्र ओर कानों को अंगुलियों से बन्द कर सक्रिय तत्त्व की ओर ध्यान करना चाहिए। जो योगी इस षण्मुखी मुद्रा का अभ्यास करता है, वह सक्रिय तत्त्व को उसके आकार, रूप, गति, स्वाद, मण्डल और लक्षण को पहचान सकता है। ऐसा पुरुष क्षुद्र भी हो, तो भी उसे योगी जानना चाहिए। जो योगी पुरुष कामनाओं से मुक्त हो, कल्पना रहित मन से कुछ भी चिन्तन न करे, वासना को दवा करके काल को लीला करके जीतता है। इस जगत् को अन्तरध्यान करके

माया-शक्ति नेत्रों के चारों ओर दिखाई देती है। वहाँ जिसका मन एक प्रहर के लिए सावधानी से स्थिर हो जाए, तब उस माया को देखे। जो पुरुष इस प्रकार प्राणायाम का अभ्यास करता है, उस पुरुष की आयु नित्य तीन घड़ी प्रमाण बढ़ती है, ऐसा शिव जी ने सिद्धसांवर तन्त्रशास्त्र में कहा है। पद्मासन बाँध कर बैठा हुआ और गुदा को पाँव की एड़ी से बन्द कर प्राणायाम के बल से रोके हुए पवन को कुम्भक करता हुआ वायु को जीतता है। प्राणों की शक्ति द्वारा रोकी हुई पवन को शनैः शनैः सुषुम्ना के साथ एक करके, उसी सुषुम्ना के छिद्र के द्वारा ब्रह्माण्ड के निराकार स्थान जहाँ शिव का स्थान है, वहाँ ले जाता है। वे धन्य हैं जो इस पद को प्राप्त करते हैं। जो योगी इसको जाने और जो इसको नित्य करेगा वह सभी दुःखों से मुक्त हो जाएगा और उसकी सभी इच्छाएँ पूरी होंगी। जिस पुरुष के शिर में स्वर-ज्ञान है, उसके पाँव में लक्ष्मी का वास होता है। जिसका शरीर और शिर सही दशा में है, वह सदा सुख पाता है। जैसे सभी वैदिक संहिताओं में ओंकार अक्षर को श्रेष्ठ कहा है, जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य को भगवान कहा है, वैसे ही मनुष्यलोक में स्वरज्ञानी को श्रेष्ठ जानना चाहिए। जो पुरुष तीन नाड़ी और पाँच तत्त्व के ज्ञान को जाने, उस पुरुष के समान लाख करोड़ रसायन भी नहीं हो सकते। नाड़ीभेद को बनाने वाला अथवा उसका ज्ञान देने वाला एक अक्षर भी बताये, उस पुरुष को पृथ्वी का सारा धन भी दे दिया जाए तो भी ऋण नहीं छूट सकता। यह जो स्वरोदय शास्त्र है इसके नौ प्रकरण हैं-स्वर-प्रकरण, तत्त्व-प्रकरण, युद्ध-प्रकरण हे देवी! वशीकरण-प्रकरण, गर्भ-प्रकरण, संवत्सर-प्रकरण, रोग-प्रकरण, नाड़ी-प्रकरण एवं काल-प्रकरण इन नवों प्रकरणों वाला यह स्वरोदय शास्त्र है। इस प्रकार से लोक में यह शास्त्र प्रसिद्ध हुआ सिद्धों और योगियों ने धारण किया है, जो इसका पाठ करने वाला है वह तो सूर्य चन्द्रमा जब तक हैं तब तक जीवित रहेगा। इस प्रकार की सिद्धि प्राप्त करेगा।

....

प्रथम अध्याय

स्वर–प्रकरण

ओं श्रीगणेशाय नमः।

श्री गणेश जी को नमस्कार है।

श्रीदेव्युवाच–

देवदेवमहादेव कृपां कृत्वा ममोपरि।
सर्वसिद्धिकरं ज्ञानं कथयस्व ममप्रभो।।१।।

श्री देवी जी ने कहा–

एक बार कैलाश पर्वत पर श्रीमहादेव के प्रति पार्वती प्रश्न करती हुई कहती है, हे देवों के देव महादेव! मेरे प्रभु शिव मेरे ऊपर कृपा करके मेरे लिए सभी सिद्धियों का ज्ञान प्रकट करें।

कथं ब्रह्माण्डमुत्पन्नं कथं वा परिवर्तते।
कथं विलीयते देव वद ब्रह्माण्डनिर्णयः।।२।।

हे महादेव! मुझे ब्रह्माण्ड का रहस्य बताने की कृपा करें कि यह ब्रह्माण्ड कैसे उत्पन्न होता है? कैसे प्रवृत्त होता है तथा अन्त में कैसे नष्ट होता है?

ईश्वरोवाच–

तत्त्वाद् ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्त्वे परिवर्त्तते।
तत्त्वे प्रलीयते देवी तत्त्वात्ब्रह्माण्डनिर्णयः।।३।।

ईश्वर ने कहा–

हे पार्वती! तत्त्व से ब्रह्माण्ड प्रकट होता है तथा तत्त्व से ही परिवर्तित होता है। एवं तत्त्व में ही लीन होता है। हे देवी! इस तत्त्व से ही ब्रह्माण्ड का विस्तार जानना चाहिए।

पार्वत्युवाच–

तत्त्वमेव परंमूलं निश्चितं ब्रह्मवादिभिः।
तत्त्वस्वरूपं किं देव तत्त्वमेव प्रकाशय।।4।।

पार्वती ने कहा–

हे शिव जी! ब्रह्मवादियों ने जो मूल निश्चय तत्त्व के सम्बन्ध में किया है, उस तत्त्व का स्वरूप कैसा है? उसको प्रकट करो।

ईश्वरोवाच–

निरंजनो निराकारो एको देवो महेश्वरः।
तस्मादाकाशमुत्पन्नमाकाशाद् वायु सम्भवः।।५।।

ईश्वर ने कहा–

हे पार्वती! आदिकाल से महेश्वर एक देवरूप हैं, निराकार एवं निरंजन हैं, उसी से आकाश प्रकट होता है एवं आकाश से वायु उत्पन्न होता है।

वायुस्तेजस्ततश्चापस्ततः पृथ्वी समुद्भवः।
एतानि पंच भूतानि विस्तीर्णानि च पंचधा।।६।।

वायु से तेज प्रकट होता है, तेज से जल उत्पन्न होता है और जल से पृथ्वी उपजती है। ये जो पाँच भूत,

इस प्रकार विस्तार वाले हैं। इन्हीं से सृष्टि की रचना होती है।

तेभ्यो ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तैरेव परिवर्त्तते।
विलीयते च तत्रैव तत्रैव रमते पुनः।।७।।

इन पाँचों तत्त्वों से ही सारा ब्रह्माण्ड प्रकट होता है। इन्हीं के कारण विचरता है, इन्हीं में विलीन होता है और इन्हीं के द्वारा पुनः पुनः रमता है।

पंचतत्त्वमये देहे पंचतत्त्वानि सुन्दरी।
सूक्ष्मरूपेण वर्त्तन्ते ज्ञायन्ति तत्त्वयोगिभिः।।८।।

हे सुन्दरी! इन पाँच तत्त्वों का ही हमारा यह शरीर बना है। पंचतत्त्व सूक्ष्म रूप से सदैव क्रियाशील रहते हैं। केवल योगी लोग ही सूक्ष्मरूप से इन्हें जान सकते हैं।

अत एव प्रवक्ष्यामि शरीरस्थं स्वरोदयम्।
हंसोचारस्वरूपेण भवेज्ज्ञानं त्रिकालजम्।।९।।

हे देवी! इस विषय में स्वरोदय ज्ञान को कहता हूँ। हंस मन्त्र के जप के कारण विद्वानों को त्रिकाल का ज्ञान प्राप्त होता है।

गुह्याद् गुह्यतरं साक्षादुपकारप्रकाशनम्।
इदं स्वरोदयं ज्ञानं ज्ञानिनां मस्तके मणिः।।१०।।

यह स्वरोदय ज्ञान अत्यन्त गोपनीय है तथा यह स्वरोदय ज्ञान उसके ज्ञाता' का हर प्रकार से उपकार करता है। यह ज्ञानियों का मुकुट रूप भूषण है।।

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ज्ञानं सुबोधं सत्यमव्ययम्।
आश्चर्य नास्तिके लोके आधारे स्वस्तिके जने।।११।।

यह ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म एवं चमत्कार वाला है। नाशरहित एवं शुभ है, विद्वानों के जीवन का आधार है। नास्तिकों को इसका बड़ा आश्चर्य है।

अथ शिष्यलक्षणं–

शांते शुद्धे सदाचारे गुरुभक्तैकमानसे।
दृढचित्ते कृतज्ञे च देयं चैव स्वरोदयम्।।१२।।

शिष्य के लक्षण–

शिष्य के लक्षण देखकर ही यह ज्ञान देने योग्य है। अर्थात् जो शिष्य शांत, शुद्ध मन वाला, सदाचारी, गुरु की भक्ति करने वाला, धैर्यवान् एवं कृतज्ञ हो, उसी को यह ज्ञान प्रदान करना चाहिए।

दुष्टे च दुर्जने क्रोधे असत्ये गुरुतल्पगे।
हीनसत्त्वे दुराचारे स्वरज्ञानं न दीयते।।१३।।

जो दुष्ट हो, दुर्जन हो, क्रोधी हो, असत्य बोलने वाला हो, गुरु पत्नी गामी हो, हीन बल वाला हो एवं दुराचारी हो, उसे स्वरज्ञान प्रदान नहीं करना चाहिए।

शृणुत्वं कथितं देवी देहस्थं ज्ञानमुत्तमं।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते।।१४।।

हे देवी! सुन देह के सम्बन्ध में उत्तम ज्ञान कहता हूँ। जिस ज्ञान के जानने से तीनो लोकों के ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरे गांधर्वमुत्तम।
स्वरे च सर्व त्रैलोक्यं स्वरमात्मस्वरूपकम्।।१५।।

स्वर को ही सभी वेद, सारे शास्त्र एवं गांधर्व विद्या समझना चाहिए। स्वर को ही त्रैलोकी एवं आत्मस्वरूप भी जानना चाहिए।

स्वरहीनं च देवज्ञं नाथहीनं गृहंयथा।
शास्त्रहीनं यथावक्ता शिरोहीनं च यद् वपुः।।१६।।

जैसे स्वामी के बिना घर, सिर के बिना धढ़, व्याकरण के बिना वक्ता, शोभा नही पाता। उसी प्रकार स्वरज्ञान के बिना ज्योतिषी भी शोभा नही पाता।

नाड़ीभेदं तथा प्राणं तत्त्व भेदे तथैव च।
सुषुम्ना मिश्रभेदं च यो जानाति स मुक्ति भाक्।।१७।।

जो पुरुष नाड़ियों के भेद को, प्राण को, तथा सुषुम्ना नाड़ी के भेद को जाने, इसी प्रकार पाँच तत्त्वों के भेद को भी जाने, उस पुरुष को मुक्ति का पात्र जान।

साकारैर्वा निराकारै शुभंवायु चलेचले।
कथयन्ति शुभं किंचित्स्वरज्ञानं वरानने।।१८।।

हे सुन्दरी! जो पुरुष प्राण को साकार अथवा निराकार के रूप में देखकर, शुभ एवं अशुभ कहते है। उसमें स्वरज्ञान को ही कारण जानना चाहिए।

ब्रह्माण्डपिण्डाखण्डोऽयं स्वरेणैव ही निर्मितम्।
सृष्टिः संहार कर्ता च स्वरः साक्षात्महेश्वरः।।१९।।

अखण्ड ब्रह्माण्ड की रचना स्वरज्ञान के कारण ही है और सृष्टि एवं संहार का कर्ता भी स्वर ही है, यह स्वर साक्षात्महेश्वर रूप है।

स्वरज्ञानात्परंज्ञानं स्वरज्ञानात्परंधनम्।
स्वरज्ञानात्परं मित्रं नैव दृष्टं न वा श्रुतम्।।२०।।

हे देवी! स्वर ज्ञान से परे कोई ज्ञान नहीं, स्वरज्ञान से परे कोई धन नहीं, स्वरज्ञान से परे कोई मित्र भी न देखा न ही सुना।

शत्रुन्हन्यात्स्वरबले तथा मित्रसमागमे।
लक्ष्मी प्राप्ते स्वरबले कीर्तिः स्वरबले सुखम्।।२१।।

स्वर-ज्ञान का ज्ञाता स्वर-बल से शत्रु को मार सकता है, अपने बिछुड़े मित्र की प्राप्ति कर सकता है। स्वरबल से लक्ष्मी की कृपा प्राप्त कर सकता है, इसके साथ ही यश एवं सुख की प्राप्ति कर सकता है।

कन्याप्राप्तिः स्वरबले स्वरेव राजदर्शनम्।
स्वरेण देवतासिद्धिः स्वरेण क्षत्रियो वशः।।२२।।

स्वर के बल से कन्या (पत्नी) की प्राप्ति कर सकता है, राजा का दर्शन कर सकता है। स्वर के बल से देवता को सिद्ध किया जा सकता है और स्वर के बल से ही क्षत्रिय वश में हो जाते हैं।

स्वरेण गम्यते देशे भोज्यं स्वरबले तथा।
लघुदीर्घ स्वरबले मलं चैव निवारयेत्।।२३।।

स्वर के बल से देशांतर को जाए, स्वरबल से भोजन को पचाए। स्वर के बल से ही मल-मूत्र त्यागे एवं निरोग रहे।

सर्वशास्त्रपुराणादि श्रुति वेदान्त पूर्वकम्।
स्वरज्ञानात्परं तत्त्वं नास्ति किंचिद्वरानने।।२४।।

हे सुन्दर मुखवाली! स्वरज्ञान से परे जो पुराण, वेद एवं वेदान्त आदि शास्त्र हैं, वे चमत्कारी नहीं हैं। स्वरज्ञान से परे स्वरज्ञान जैसा कोई भी तत्त्व नहीं है।

नामरूपादिका सर्वे मिथ्या सर्वेषु विभ्रमाः।
अज्ञानमोहिता मूढ़ा यावत्तत्त्वं न विद्यते।।२५।।

जब तक तत्त्व का ज्ञान नहीं है, तब तक सारे नाम और रूप आदि दृश्य झूठ हैं। क्योंकि तत्त्व का ज्ञान न होने के कारण मूढ़ लोग कुछ नहीं जानते।

इदं स्वरोदयं ज्ञानं सर्वशास्त्रोत्तमोत्तमम्।
आत्मघटं प्रकाशार्थं प्रदीप कलिकोपमम्।।२६।।

यह जो स्वरोदय शास्त्र है यह सारे शास्त्रों में उत्तम है। यह आत्मा को प्रकाशित करने के लिए दीपक के समान है। अर्थात् जिस प्रकार दीपक अन्धकार को दूर करता है, उसी प्रकार स्वरोदय शास्त्र भी आत्मा के अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करता है।

यस्मै परस्मै वा प्रोक्तं प्रोक्तं न प्रश्न हेतवे।
तस्मादेतत्स्वयं ज्ञेयं आत्मनैवात्मनात्मनि।।२७।।

यह जो स्वरोदय ज्ञान है हर किसी को देने योग्य नहीं है अथवा यह ज्ञान केवल प्रश्नो के उत्तर के लिए ही नहीं है। यह ज्ञान तो ज्ञानवान् के लिए कहा है, जिस कारण यह स्वयं को स्वयं ही जानने योग्य है।

न तिथिर्न च नक्षत्रं न वारो ग्रहदेवता।
न च व्यष्टिर्व्यतीपात वैधृताद्यास्तथैव च।।२८।।

इस शास्त्र का ज्ञान होने पर तिथि, नक्षत्र, वार, ग्रहदेवता, भद्रा, व्यतीपात एवं वैधृतादिक योग का विचार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

कुयोगो नास्ति देवेशि भवन्ति न कदाचन।
प्राप्ते स्वरबले युक्ते सर्वमेव फलं शुभम्।।२९।।

इस शास्त्र के आगे कोई कुयोग नहीं, कदाचित हो तो स्वरबल के कारण उसका भी फल शुभ जानना चाहिए।

देह मध्ये स्थिता नाड्यो बहुरूपा सुविस्तराः।
ज्ञातव्याश्च बुधैर्नित्यं स्वदेह ज्ञान हेतवे।।३०।।

देह के मध्ये में स्थित नाड़ी बहुरूपी विस्तार वाली है। अतः विद्वानों के लिए अपने देह-ज्ञान के लिए यह नाड़ी जानने योग्य है।

नाभिस्थानक कण्ठोर्ध्व अंकुरादेवनिर्गतः।
द्विसप्तति सहस्राणि देहमध्ये व्यवस्थिताः।।३१।।

नाभिस्थान से अंकुरित होकर कण्ठ के ऊपर तक विस्तृत बहत्तर हजार नाड़ियाँ देह में स्थित हैं।

नाभिस्था कुण्डलीशक्तिः भुजंगाकार शायिनी।
ततो दशोर्ध्वगा नाड्यो दशैवाधः प्रतिष्ठिताः।।३२।।

नाभिस्थान में कुण्डलाकार शक्ति है, जो सर्प की भाँति सोई हुई है। उसी से दस नाड़ियाँ ऊपर की ओर गई हैं और दस नाड़ियाँ नीचे की ओर स्थित हैं।

देहे तिर्यग्गतानाड्यश्चतुर्विंशति संख्यया।
प्रधाना दशनाड्यस्तु दशवायुप्रवाहका।।३३।।

देह में चौबीस नाड़ियाँ तिरछी हैं, जिनमें प्रधान दस नाड़ियाँ हैं। वे दस प्रकार के वायु के साथ बहने वाली हैं।

तिर्यगुर्ध्वमधस्ताच्च वायुर्देहसमन्विता।
चक्रवत्संस्थिता देहे सर्वे प्राणान्समाश्रिताः।।३४।।

देह में ये जो नाड़ियाँ हैं, कुछ तिरछियाँ, कुछ ऊपर को और कुछ नीचे को गई हैं। जहाँ ये आपस में मिलती हैं, तो वहाँ पर इनका आकार चक्र की तरह होता है, देह में ये प्राणों के सहारे स्थित हैं।

तासां मध्ये दश श्रेष्ठा दशानां तिस्र उत्त्माः।
इड़ा च पिंगला चैव सुषुम्ना च तृतीयका।।३५।।

इन नाड़ियों में से दस नाड़ियाँ श्रेष्ठ हैं और दसों में तीन श्रेष्ठ हैं, एक इड़ा दूसरी पिंगला एवं तीसरी का नाम सुषुम्ना नाड़ी है।

गांधारी हस्तिनी जिह्वा पूषाचैव यशस्विनी।
अलंबुषा कुहुष्चैव शंखिनी दशमी तथा।।३६।।

अन्य सात नाड़ियों के नाम हैं गांधारी, हस्तजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलंवुषा, कुहु, एवं शंखिनी।

इड़ा वामे स्थिता भागे दक्षिणे पिंगला स्मृता।
सुषुम्ना मध्यदेशे तु गांधारी वामचक्षुषी।।३७।।

हे देवी! इड़ा नाड़ी वाम भाग में स्थित जान और दक्षिण भाग में पिंगला स्थित है, सुषुम्ना मध्य भाग में स्थित है एवं गांधारी वाम नेत्र में जान।

दक्षिणे हस्तजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे।
यशस्विनी वामकर्णे आनने चाप्यलंवुषा।।३८।।

दक्षिण नेत्र में हस्तजिह्वा स्थित है, पूषा नाड़ी दक्षिण कान में, यशस्विनी वाम कर्ण में विराजमान है, एवं मुख में अलंवुषा स्थित है।

कुहुश्च लिंगदेशे तु मूलस्थाने च शंखिनी।
एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्ठन्ति दशनाड़िका।।३९।।

कुहुनाड़ि लिंग स्थान में विराजमान हैं, एवं शंखिनी मूलस्थान में स्थित है। इस प्रकार से दस नाड़ियाँ देह में विद्यमान हैं।

नामानि नाड़िकानां तु वाहानां प्रवदाम्यहम्।
प्राणापानसमानश्च उदानव्यान एव च।।४०।।

अब मैं नाड़ियों से सम्बन्धित वायुओं के नाम कहता हूँ। मुख्य वायुयों की संख्या पाँच है– इनके नाम हैं– प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान।

नागः कृकल कूर्मश्च देवदत्तो धनंजयः।
हृदि प्राणो वसेन्नित्यं अपानो गुह्य मंडले।।४१।।

नाग, कृकल, कूर्म, देवदत्त एवं धनंजय सहायक प्राणवायु कहलाते हैं। दस प्रकार के वायुओं के नाम के बाद अब इनके स्थानों को सुन प्राणवायु नित्य हृदय में रहता है, अपानवायु गुदा में विराजता है।

समानो नाभिदेशेतु उदानो कण्ठमध्यगः।
व्यानो व्यापि शरीरस्थ प्रधाना दश वायवः।।४२।।

समानवायु का स्थान नाभि में है, उदानवायु कण्ठदेश में रहता है एवं व्यान नाम का वायु समस्त शरीर में व्याप्त रहता है। इस प्रकार ये प्रधान दस वायु हैं।

प्राणाद्या पंच विख्याता नागाद्या पंच वायवः।
तेषामपि च पंचानां स्थानानि च वदाम्यहम्।।४३।।

हे देवी! मैंने प्राणादि पाँच प्राणों के विषय में कहा, अब नागादि पाँच प्राणों के कार्य एवं उनके स्थान भी कहता हूँ।

उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः।
कृकलो क्षुत्कृतो ज्ञेयो देवदत्तो विजृंभके।।४४।।

डकार के विषय में नाग–नाम की वायु होती है, कूर्म–नाम के वायु से पलक झपकते है, कृकल नाम का वायु छींक का कारण होता है, एवं देवदत्त नाम के वायु से जम्हाई आती है।

न जहाति मृतं चापि सर्वव्यापी धनंजयः।
एता नाड़ीसु सर्वासु भ्रमंते जीवरूपिणे।।४५।।

धनंजय नाम का वायु मृत्योपरांत भी शव को नहीं छोड़ता उसमें भी व्याप्त रहता है। ये दस प्रकार के प्राण जीवरूपी प्राणी के दस नाड़ियों के ऊपर विचरते हैं।

प्रकटं प्राणसंचारं लक्षितं देह मध्यतः।
इड़ा पिंगला सुषुम्ना नाड़ीभिस्तिसृभिर्बुधः।।४६।।

देह में विचरणे वाला जो प्रत्यक्ष प्राण है, उसको विद्वानों ने इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना तीन नाड़ियों के रूप में जाना है।

इड़ा वामे च विजया पिंगला दक्षिणे स्मृता।
इड़ा नाड़ी स्थिता वामे ततो व्यस्ता च पिंगला।।४७।।

इड़ा नाम वाली नाड़ी वाम भाग होकर जय को दे; पिंगला दक्षिण भाग में जय को दे। इड़ा नाड़ी वाम भाग में रहती है उसी से पिंगला खुलती है।

इड़ायां च स्थितश्चन्द्रो पिंगलायां च भास्करः।
सुषुम्ना शंभु रूपेण शंभुं हंस स्वरूपकम्।।४८।।

इड़ा नाड़ी में चन्द्रमा का वास होता है और पिंगला में सूर्य का वास। सुषुम्ना में शिव विराजमान होते हैं और शिव का वह रूप हंस का होता है।

हकारो निर्गमो प्रोक्तः सकारोक्तं प्रकाशने।
हकारः शिवरूपश्च सकारः शक्तिरुच्यते।।४९।।

जब हम श्वास लेते हैं तो 'स' एवं जब साँस को छोड़ते हैं तो 'ह' ध्वनि उत्पन्न होती है। हकार को शिवरूप एवं सकार को शक्ति रूप जानना चाहिए।

शक्तिरूपे स्थितश्चन्द्रो वामनाड़ी प्रवाहकः।
दक्षनाड़ी प्रवाहश्च शंभुरुपी दिवाकरः।।५०।।

श्वास का प्रवाह इड़ा में शक्तिरूप चन्द्रमा के रूप में बहता है तथा दक्षिण भाग की नाड़ी पिंगला में शिवरूप सूर्य के रूप में बहता है।

श्वासे सकारे संस्थे तु यद्दाने दीयते बुधैः।
तद्दानं जीवलोकेऽस्मिन् कोटिकोटि गुणं भवेत्।।५१।।

सकार के श्वास में स्थित होकर (अर्थात् जब मनुष्य साँस लेता है तो हंस नाम का जप करता रहता है, क्योंकि जब साँस को बाहर छोड़ा जाता है 'स' ध्वनि उत्पन्न होती है तथा जब साँस को अन्दर लिया जाता है, तो 'हं' ध्वनि उत्पन्न होती है, इसी को हंस मन्त्र कहा जाता है, जिसका अर्थ **सोऽहम्** अर्थात् मैं वही हूँ) विद्वानों के द्वारा जो दान दिया जाता है। वह दान इस जीवलोक में करोड़ों गुना फल देता है।

अनेन लक्षयेद्योगी चैकचित्त समाहितः।
सर्वमेव विजानीयान्मार्गवै चन्द्रसूर्ययोः।।५२।।

इस प्रकार इस स्वरोदय शास्त्र को योगी एकाग्र चित्त होकर जानने का प्रयास करे, तो वह चन्द्र एवं सूर्य की नाड़ियों की गतिविधियों के द्वारा सब कुछ जान जाता है।

ध्यायेत्तत्त्वं स्थिरेजीवे अस्थिरे न कदाचन।
इच्छासिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयं तथा।।५३।।

जब मन स्थिर हो, तब तत्त्वचिंतन करे। परन्तु जब मन अस्थिर हो, तो ऐसा न करे। इस प्रकार अभ्यास करने वाले योगी की इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। इसके साथ–साथ महालाभ और जय को भी प्राप्त करता है।

चन्द्रसूर्यौ सदाभ्यासं ये कुर्वन्ति सदानरः।
अतीतानागतं ज्ञानं तेषां हस्तगतः सदा।।५४।।

यो साधक सदा अभ्यास कर चन्द्र और सूर्य नाड़ियों को संतुलित करता है। उस साधक को भूत और भविष्य का ज्ञान, हस्तज्ञान के द्वारा हो जाता है।

वामेचामृतरूपस्याज्जगदथायनं परम्।
दक्षिणे चरभागेन जगदुत्पादयस्तथा।।५५।।

वाम भाग में इड़ा–नाड़ी जगत् के कार्यो को पूर्ण करने के लिए अमृत रूप होती है। दक्षिण भाग में जगत् की उत्पत्ति के कारण वाले चर कार्य सिद्ध होते हैं।

मध्यमा भवति क्रुद्धा दुष्टा सर्वत्र कर्मसु।
सर्वत्र शुभ कार्येषु वामाभवति पुष्टिदा।।५६।।

मध्यमा (सुषुम्ना) नाड़ी क्रोध से युक्त है अतः सभी कर्मो में दुष्ट है। सभी शुभ कर्मो में पुष्टि देने वाली वाम नाड़ी अथवा इड़ा नाड़ी है।

निर्गमे तु शुभा वामा प्रवेशे दक्षिणा शुभा।
चन्द्रः समस्तु विज्ञेयो रविस्तु विषमे सदा।।५७।।

यात्रा के लिए निकलना हो, तो घर से निकलते समय चन्द्र-नाड़ी शुभ है और घर में प्रवेश करना हो तो सूर्य-नाड़ी शुभ होती है। चन्द्रमा को स्थिर जानना चाहिए। एवं सूर्य को सदा गतिशील जानना चाहिए।

चन्द्रः स्त्री पुरुषः सूर्यो चन्द्रगौरसितो रविः।
चन्द्र नाड़ी प्रवाहे च सौम्यं कर्माणि कारयेत्।।५८।।

चन्दमा (इड़ा) का प्रवाह स्त्री (शक्ति) तथा सूर्य (पिंगला) का प्रवाह पुरुष रूप होता है। अर्थात् चन्द्रमा शक्ति एवं सूर्य शिव स्वरूप है। चन्द्रमा का वर्ण गौर और सूर्य का वर्ण लाल है। चन्दमा-नाड़ी के प्रवाह में सभी सौम्य कार्य करने चाहिए।

सुषुम्नाया प्रवाहे च सिद्धि मुक्ति फलानि च।
सूर्य नाड़ी प्रवाहे च रौद्रं कर्माणि कारयेत्।।५९।।

सुषुम्ना-नाड़ी के प्रवाह में सिद्धि और मुक्ति प्रदान करने वाले कार्य करने चाहिए। सूर्य-नाड़ी के प्रवाह में क्रूर अर्थात् परिश्रम वाले कर्म करने चाहिए।

आदौ चन्द्रसिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे।
प्रतिपद्या दिनान्याहस्त्रीणित्रीणि कमोदयम्।।६०।।

शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा के प्रभात काल में चन्द्रमा (इड़ा-नाड़ी) का प्रवाह होता है, कृष्ण-पक्ष के प्रतिपदा के प्रभात काल में सूर्य (पिंगला-नाड़ी) का प्रवाह होता है। यह कम प्रतिपदा से तीन दिन तक रहता है।

सार्द्धद्विघटिकाज्ञेया शुक्ले कृष्णे शशीरवीः च।
वहत्यैक दिनेनैव यथा षष्टीघटी कमात्।।६१।।

शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष में चन्द्रमा (इड़ा-नाड़ी) और सूर्य (पिंगला-नाड़ी) में स्वर कम से ढाई-ढाई घड़ी में बहता है। यह व्यवस्था साठ घड़ी अथवा एक दिन तक क्रमबद्ध रहती है।

बहत्या बहुघटीमध्ये पंचतत्त्वविनिर्दिशेत्।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुर्विपरीतेर्विपर्ययः।।६२।।

अनेक घड़ियों के बीच में अनेक स्वरों में पाँच तत्त्वों को देखे, इसके लिए प्रतिपदाओं के दिन कहें हैं। जिस प्रकार पहले कहा गया है, इससे विपरीत स्वर चले तो अनिष्ट फल हो।

शशांकं वारयेद्रात्रौ दिवावार्यो दिवाकरम्।
इत्याभ्यासरतोनित्ये सयोगी नात्र संशयः।।६३।।

चन्द्र-नाड़ी को रात को और सूर्य-नाड़ी को दिन को रोके। इस प्रकार का नित्य अभ्यास करने वाला योगी कहलाता है, इसमें संशय नहीं।

सूर्येण बध्यते सूर्यो चन्द्रश्चन्द्रेण बध्यते।
यो जानाति क्रियामेतां त्रैलोकां वशयेत्क्षणात्।।६४।।

सूर्यनाड़ी के बाँधने से प्राण को बाँधा जाता है और चन्द्रनाड़ी के बाँधने से मन को संयम में किया जाता है। इस क्रिया को जो मनुष्य जानता है, वह मनुष्य क्षण में त्रैलोकी को वश में कर सकता है।

गुरुशुक्रबुधेन्दूनां वासरे वामनाड़ीका।
सिद्धिदा सर्वकार्येषु शुक्लपक्षे विशेषतः।।६५।।

शुक्लपक्ष हो, तो गुरुवार, शुक्रवार, बुधवार एवं सोमवार के दिन चन्द्र-नाड़ी के प्रवाह काल में किये गये सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

एकैकस्य घटीपंच क्रमेणैवोदयन्ति च।
क्रमादेकैक नाड्यस्तु तत्त्वानां पृथगुद्भवम्।।६६।।

ये जो पाँच तत्त्व हैं, वे क्रम से एक-एक घड़ी करके प्रत्येक नाड़ी से उपजते हैं। अतः यह क्रम पाँच घड़ियों में पूरा होता है।

अहोरात्रस्य मध्ये तु ज्ञेया द्वादश संक्रमात्।
वृषकर्कटकन्याली मृगमीननिशाकरे।।६७।।

दिन और रात के बीच बारह लग्न बीत जाते हैं, वृषलग्न, कर्कटलग्न, कन्यालग्न, वृष्चिकलग्न, मकरलग्न और मीनलग्न हो इन लग्नों में चन्द्र नाड़ी बहती हो तो शुभ फल होतां है।

मेषे सिंहे च धनुषी तुलायां मिथुने घटे।
उदयो दक्षिणेज्ञेयो शुभाशुभविनिर्णयः।।६८।।

मेषलग्न, सिंहलग्न, धनुलग्न, तुलालग्न, मिथुनलग्न और कुम्भलग्न में दाहिने सूर्य बहता हो तो शुभ फल हो। इन राशियों की संक्रांति का प्रभाव देखना चाहिए। विद्वान पुरुष इस प्रकार शुभाशुभ निर्णय जाने।

तिष्टेत्पूर्वोत्तरे चन्द्रो भानुः पश्चिमदक्षिणे।
दत्तनाड़ी प्रसारेण न गच्छेद्वामपश्चिमे।।६९।।

चन्द्रमा-नाड़ी के प्रवाह के समय पूर्व और उत्तर दिशा की ओर यात्रा नहीं करनी चाहिए तथा सूर्य-नाड़ी के प्रवाह के समय पश्चिम और दक्षिण दिशा को नहीं जाना चाहिए।

वामाचार प्रवाहेन न गच्छेत्पूर्वमुत्तरे।
परिपंथि भयं तस्य गतोऽसौ न निवर्तते।।७०।।

वामभाग में चन्द्र–नाड़ी के प्रवाह के समय पूर्व और उत्तर की ओर यात्रा नहीं करनी चाहिए। इस समय यदि कोई यात्रा करे तो मार्ग में चारों ओर भय हो और फिर यात्री लौटकर घर नहीं पहुँचे।

तस्मात्तत्र न गंतव्यं बुधैः सर्वहितेषुभिः।
तदा तत्र तु संयातं मृत्युरेव न संशयः।।71।।

इस कारण ऊपरोक्त प्रवाह काल में सर्वहित चाहने वाला विद्वान पुरुष निषिद्ध ओर यात्रा न करे। यदि कोई यात्रा करे तो मृत्यु हो इसमें संशय नहीं।

शुक्लपक्षे द्वितीयायां अर्के वहति चन्द्रमा।
दृश्यते लाभदं पुंसां सोमे सौख्ये प्रजायते।।७२।।

शुक्लपक्ष की द्वितीया को सोमवार हो तब चन्द्रमा के स्थान पर सूर्य का प्रवाह हो, तो उस समय यदि शुभ कार्य करे, तो पुरुषों को लाभ, जय और सौख्य देता है।

सूर्योदये यदा सूर्यो चन्द्रश्चन्द्रोदये तथा।
सिद्धयन्ति सर्वकार्याणि दिवारात्रि गतान्यपि।।७३।।

यदि सूर्योदय के समय सूर्य–नाड़ी प्रवाहित हो और चन्द्रोदय के समय चन्द्र–नाड़ी प्रवाहित हो, तो उस दिन और रात के किये हुए सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

चन्द्रकाले यदा सूर्यो सूर्यश्चन्द्रोदयोभवेत्।
उद्वेग कलहः हानिं शुभं सर्वं निवारयेत्।।७४।।

चन्द्र–नाड़ी के बहने के समय में यदि सूर्य प्रवाहित हो और चन्द्र–नाड़ी यदि सूर्य–नाड़ी के प्रवाहकाल में चले, तब बडा कोप, कलह और हानि हो एवं शुभ कार्यो का फल नष्ट हो।

प्रथमेऽह्नि उद्वेगं धनहानी द्वितीयके।
तृतीये गमनं प्रोक्तं इष्टनाशं चतुर्थके।।७५।।

स्वर के विपरीत प्रवाह के पहले दिन बड़ा कोप हो दूसरे दिन धनहानि हो। तीसरे दिन विदेश गमन हो चौथे दिन इष्ट का नाश हो।

पंचमे राजविध्वंसं षष्टे सर्वार्थनाशनम्।
सप्तमे व्याधि दुःखानि अष्टमे मृत्युमादिशेत्।।७६।।

पाँचवे दिन स्वर उलटा चले, तो राज विध्वंस करे, छठे दिन सारे धन पदार्थ का नाश करे। सातवे दिन व्याधि ओर दुःख दे, आठवे दिन मृत्यु हो।

कालत्रय दिनान्यष्टौ विपरीतं यदावहेत्।
तदा दुष्टफलं ज्ञेयं किंचित्पुण्यं तु शोभनम्।।७७।।

इस प्रकार यदि तीनों समय आठ दिन तक विपरीत स्वर चले, तो अशुभ फल हो, एवं थोड़ा पुण्य फल जानना चाहिए।

प्रातर्मध्याह्नयोश्चन्द्र सायंकाले दिवाकरः।
तदा नित्यजयो लाभो विपरीतश्च दुःखदम्।।७८।।

जब प्रातः काल और मध्याह्न में चन्द्र-नाड़ी हो एवं सायं काल में सूर्यनाड़ी हो, तब नित्य जय और लाभ होता है। इसके विपरीत हो तो तब दुःख होता है।

वामे वा दक्षिणे वापि एवं संक्रमतेऽपि वा।
कृत्वा तत्पादमादौ च यात्रा भवति सिद्धिदा।।७९।।

बायाँ स्वर अथवा दाहिना स्वर प्रवाहित हो, इस प्रकार जिस ओर स्वर चल रहा हो, उसी ओर का पाँव पहले उठाये तो यात्रा सफल हो।

चन्द्रः समे यदा कार्यो रविस्तु विषमे सदा।
पूर्णपादपुरस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा।। ८०।।

चन्द्र–नाड़ी सम कार्य में सूर्य–नाड़ी विषम कार्य में शुभ है। जिस ओर का स्वर चलता हो उसी ओर के पूर्ण पाँव को आग चलाए तो यात्रा सफल हो।

चन्द्रवारो चतुष्पादापंचपादाश्च भास्करे।
एवं च गमने श्रेष्ठं साध्येत्भुवनत्रयम्।।८१।।

जब चन्द्र–नाड़ी में स्वर का प्रवाह हो, तों उसी ओर से चार कदम चले और सूर्य–नाड़ी के प्रवाह में उसी ओर से पाँच कदम चले। इस प्रकार स्वर का पालन करने से यात्रा शुभ होती है और यात्री तीनों लोकों को साधता है।

यदंगे चरते वायुस्तदंगस्य करस्तलम्।
सुप्तोस्थितो मुखं स्पृष्ट्वा लभते वांछितं फलम्।।८२।।

प्रातः सोकर उठते समय जिस अंग में वायु बहता हो, उसी ओर के हाथ को देखकर मुख पर फेरे तब वांछित फल को प्राप्त करे।

परदत्ते तथाग्राह्ये गृहान्निर्गमनेऽपि च।
यदंगे बहति वायु ग्राह्यं गति करांघ्रिणा।।८३।।

किसी से धन लेना हो अथवा किसी को देना हो और घर से कार्य के लिए निकलना हो, तब जिस ओर का स्वर चलता हो उसी ओर के हाथ और पाँव का प्रयोग करे तो शुभ हो।

न हानिः कलहः नैव कंटकैर्नापि भिद्यते।
निवर्तते सुखेनैव सर्वोपद्रववर्जिताः।।८४।।

जो ऊपरोक्त नियम का पालन करते हैं, उनकी कभी हानि नहीं होती, न ही उनका किसी से झगड़ा होता है और न ही शत्रु उनको परेशान कर सकते हैं। वे सदैव उपद्रव के बिना सुख से सारे कार्य करते रहते हैं।

गुरुबंधुनृपामात्य–अन्येऽपि शुभदायिनी।
पूर्णांगे खलु कर्त्तव्याकार्यसिद्धिमभीप्सिता।।८५।।

गुरु, बंधु, राजा, अमात्य एवं अन्य जनों से शुभ फल पाना हो, तो सक्रिय अंग का निश्चय करके कार्य करे तब सिद्धि की प्राप्ति हो।

अपि चौराधमानाड्या अनिष्ट्या वादिनेग्रहा।
कर्त्तव्या खलुरिक्तायां जयलाभसुखार्थिभिः।।८६।।

यदि चोरी करनी हो, कोई नीच कर्म करना हो अथवा किसी का अनिष्ट करना हो, तो सूर्य प्रवाह और रिक्त तिथि (४,९,१४) में जय, लाभ और सुख चाहने वाला करे।

दूरंदेशे विघातव्यं गमनं तु हिमद्युतौ।
अभ्यर्णदिशे हीने तु तरणाविति केचन।।८७।।

चन्द्रस्वर के प्रवाह में दूर की यात्रा अथवा हिमालय को जाए, तो बाधा हो। सूर्य–नाड़ी के प्रवाह में समीप देश अथवा नीचदेश को जाए, तो बाधा हो।

यत्किंचित्पूर्वमुद्दिष्टं लाभादि सप्तरात्रगे।
तत्सर्वं पूर्णनाडीषु जायते निर्विकल्पकम्।।८८।।

जो कुछ पहले लाभ आदि का वर्णन किया गया है, उनकी सफलता सात रात्रियों पर्यन्त ही होती है। एवं कार्य यदि सक्रिय–स्वर के समय में किया जाये तो अवश्य ही सफलता की प्राप्ति होती है।

शून्यनाड्या विपर्यस्तं यत्पूर्वं प्रतिपादितम्।
जायते नान्यथा चैव यथा सर्वज्ञ भाषितम्।।८९।।

इसी प्रकार यदि ऊपरोक्त के विपरीत किये गये कार्य अर्थात् शून्यनाड़ी के समय में किये गये कार्य अशुभ फल देते हैं। ऐसा सर्वज्ञ जनों के द्वारा कहा गया है।

व्यवहारे खलोच्चाटे विषविद्यादि वंचकः।
कुपिता स्वामिचौराद्या पूर्णस्थायुर्भयंकरः।।९०।।

सक्रिय-स्वर के समय व्यवहार में नीच के साथ झगड़ा हो, किसी को आप पर उच्चाटन करना हो, जादू करना हो अथवा आपके साथ ठगी करनी हो, कुपित स्वामी और चौर से आप सुरक्षित नहीं हैं।

दूराध्वाने शुभश्चन्द्रो निर्विघ्नो नेष्टसिद्धिदः।
प्रवेशे कार्यहानिषु सूर्यो शीघ्रं प्रशस्यते।।९१।।

चन्द्र-प्रवाह के समय में मार्ग से लंबी यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न हो, परन्तु कार्य सिद्धि न हो। इसी प्रकार सूर्य-प्रवाह के समय की हुई यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न हो और कार्य भी सिद्ध हो, परन्तु किसी के घर में प्रवेश करे तो कार्य हानि हो।

चन्द्रवारे वशंहन्ति सूर्यो वेला वशंनयेत्।
सुषुम्नायां भवेन्मोक्षं एको देवस्त्रिधा स्थितः।।९२।।

चन्द-स्वर के प्रवाह में पुरुष को वश में नहीं किया जा सकता, सूर्य-स्वर के प्रवाह में पुरुष को वश में किया जा सकता है। शून्य-स्वर अथवा सुषुम्ना के प्रवाह में मोक्ष की प्राप्ति हो। इस प्रकार एक स्वर तीन

भिन्न–भिन्न स्थितियों में भिन्न–भिन्न फल प्रदान करता है।

अयोग्ययोग्यतानाड़ी योग्यस्थानेऽप्ययोग्ता।
कार्यैनिबंधनो जीवः कथं रुद्रं समाचरेत्।।९३।।

संसार में स्वर का ज्ञान न होने के कारण, स्वर–योग नहीं होने पर भी कार्य किये जाते है। अतः वे कार्य सिद्ध नहीं होते, जब स्वर–योग होता है, तब जीव के द्वारा कार्य किये नहीं जाते। तब कैसे शिव वाक्य कां पालन करेंगे? अर्थात् समयानुसार कार्य नहीं करने से कार्य सिद्ध कैसे होंगे?

शुभाशुभानि कार्यानि कियतेऽहर्निशं यदा।
तदा कार्यनिरोधेन कार्यनाड़ी प्रचालयेत्।।९४।।

रातदिन जो कुछ शुभ अथवा अशुभ कार्य करने हों, तो व्यक्ति उन कार्यो की सिद्धि के लिए स्वर पर नियन्त्रण करे और कार्य के अनुसार ही स्वर का परिचालन करे तो कार्य सिद्धि होती है।

अथ इड़ाकार्याणि–

इड़ा–नाड़ी के प्रवाह–काल में शुभ कार्य–

स्थिरकार्याण्लंकारे दूराध्वनगमने तथा।
आश्रमे हर्म्यप्रासादे वस्तुनां संग्रहेऽपि च।।९५।।

जो स्थिर कार्य हैं जैसे श्रृंगार के कार्य एवं दूर मार्ग से जाना हो। आश्रम से सम्बन्धित कार्य हो, महल बनाना हो अथवा महल में वास करना हो एवं धन का संग्रह करना हो।

वापीकूपतड़ागादि प्रतिष्ठा स्तंभभेदयोः।
यात्रा दाने विवाहे च वस्त्रालंकारभूषणे।।९६।।

वावली, कूंए अथवा तालाब की प्रतिष्ठा करनी हो, स्तंभ भेदना हो। यात्रा, दान, विवाह, वस्त्र अथवा भूषण बनाना अथवा पहनना हो।

शान्तिकं पुष्टकं चैव दिव्यौषधिरसायणम्।
सुस्वामिदर्शने मैत्री वाणिज्यान्नसंग्रहे।।९७।।

शान्तिकार्य और पुष्टि निमित्त प्रयोगादि करना हो। एवं दिव्यौषधि के लिए रसायण बनानी हो। अपने स्वामी का दर्शन करना हो, व्यापार अथवा अन्न का संग्रह करना हो।

ग्रहप्रवेशे सेवायां कृषौ च बीजवापने ।
शुभकर्माणि संधौ च निर्गमे च शुभं शशि।।९८।।

गृह प्रवेश करना हो, नोकरी करनी हो, कृषि करनी हो, बीज बोना हो, एवं शुभ कार्य करना हो, सन्धि विषय हो, घर से निकलना हो, तो चन्द्रनाड़ी शुभ होती है।

विद्यारंभादि कार्येषु बान्धवानां च दर्शने।
जलमोक्षे च धर्मे च दीक्षायां मन्त्रसाधने।।९९।।

विद्यारम्भादि कार्यों में, बान्धवों का दर्शन करना हो, जलप्रवाह छोड़ने में, धर्म विषय में, दीक्षा एवं मन्त्र साधने में।

कालविज्ञानसूत्रे च चतुष्पदग्रहागमे।
कालव्याधि चिकित्सां च स्वामि संबंधने तथा।।१००।।

समय को जानने का विषय हो, विशेष ज्ञान सूत्र का विषय हो, चार पाँव वाले पशु ग्रहण करने में, व्याधियों की चिकित्सा करनी हो, और स्वामी बनाना हो।

गजस्यारोहणे धन्वी गजादिनां च बंधने।
परोपकारिणे चैव निधीनां स्थापने तथा।।१०१।।

हाथी पर सवारी करनी हो, धनुर्विद्या का अभ्यास करना हो, हाथी को पकड़ कर बाँधना हो, दूसरे का उपकार करना हो, एवं धन को सुरक्षित रखना हो।

गीतवाद्यादि नृत्यादौ गीतशास्त्रविचारणे।
पुरग्रामनिवेशे च तिलकं छत्रधारणे।।१०२।।

गाना बजाना एवं नाचना सीखना हो, संगीत सीखना हो, नगर एवं ग्राम में प्रवेश करना हो, तिलक लगाना हो अथवा छत्र धारण करना हो।

आर्तिशोकविशादे च ज्वरिते मूर्छितेऽपि च।
स्वजने स्वामि संबंधे धान्यादि दायसंग्रहे।।१०३।।

पिडित पुरुष, संताप वाले, ज्वर वाले, मूर्छा वाले की चिकिज्सा करनी हो। सज्जन अथवा स्वामी के साथ सम्बन्ध बनाना हो, धान्य आदि अन्न का लेन-देन करना हो अथवा संग्रह करना हो।

स्त्रीणां दंता विभूषायां वृष्टेरागमने तथा।
गुरुपूजा विषादीनां चालने च वरानने।।१०४।।

हे देवी! स्त्रियों के लिए दंत-भूषण चड़ाना हो, वारिश के लिए प्रार्थना करनी हो, गुरु की पूजा करनी हो अथवा विषाद को शान्त करना हो।

इड़ायां सिद्धिदं प्रोक्तं योगाभ्यासादि कर्म च।
तत्रापि वर्जयेद्वायुस्तेजश्चाकाशमेव च।।१०५।।

ऊपरोक्त कार्यो के समय इड़ा–नाड़ी का प्रवाह पूर्णता प्रदान करता है। योगाभ्यास आदि कर्म सिद्ध होते हैं। परन्तु उसमें भी वायु–तत्त्व, तेज–तत्त्व एवं आकाश–तत्त्व को त्यागना चाहिए।

सर्वे कर्माणि सिध्यन्ति दिवारात्रि गतान्यपि।
सर्वेषु शुभकार्येषु चन्द्रवारं प्रशस्यते।।१०६।।

ऊपरोक्त परिस्थिति के अनुसार सभी कार्य रात–दिन में सिद्ध होते हैं। सभी शुभ कार्यो में चन्द्र–प्रवाह शुभ कहा गया है।

अथ सूर्य–नाड़ी कार्याणि–

पिंगला–नाड़ी के प्रवाह–काल में करने योग्य कार्य–

पिंगला कठिनं क्रूरं विप्राणां पठने तथा।
स्त्रीसंगवेश्यागमने महानौकाधिरोहने।।१०७।।

पिंगला–नाड़ी के प्रवाह में कठिन एवं क्रूर कर्म को करना, क्रूर विद्या को सीखना, स्त्री का संगम, वेश्या का संगम करना हो अथवा जलयान की सवारी करनी हो।

भ्रष्टकार्ये स्वरा वीरे उग्रमन्त्रानुपासने।
विह्वलो ध्वंसदेशादि विषदानादि वैरिणे।।१०८।।

भ्रष्ट कार्य करना हो, मदिरा का निर्माण करना हो, वीरता वाला कार्य करना हो, उग्र मन्त्र की उपासना करनी हो, किसी को जादू से व्याकुल करना हो, देश को विध्वंस करना हो अथवा शत्रु को विष देना हो।

शस्त्राभ्यासे च गमने मृगया पंशुविक्रमे।
इष्टका काष्ठपाषाणे रत्नघर्षणदारणे।।१०९।।

शस्त्रों का अभ्यास करना हो, शस्त्र लेकर शिकार को जाना हो, पशु खरीदना हो। ईंटें, काष्ठ अथवा पत्थर घड़ने हों, रत्न घर्षण करना हो अथवा काटना हो।

गत्यभ्यासे यंत्र मन्त्रे दुर्गपर्वतरोहणे।
द्युते चौर्ये गजाश्वादि रथसाधनवाहने।।११०।।

गति का अभ्यास करना हो, यंत्र–मन्त्र करना हो, दुर्ग अथवा पर्वत पर चड़ना हो, जूआ खेलना हो, चौरी करनी हो, हाथी अथवा घोड़े वाले रथ को नियंत्रित करना हो।

व्याजामे मारणोच्चाटे षट्कर्मादि साधने।
यक्षणी यक्ष वैताली विषभूतादि विग्रहे।।१११।।

व्याजाम करना हो, शत्रू को मारना हो, उच्चाटण करना हो, षट्कर्म करना हो, यक्षिणी साधनी हो, यक्ष और वैताल साधना हो, विष को रोकना हो एवं भूत को वश में करना हो।

खरोष्ट्र महिषादीनां गजाश्वारोहणे तथा।
नदी जलौ च तरणे भेषजे निखिले स्वने।।११२।।

गधे, ऊँट, भैंस, हाथी अथवा घोड़े की सवारी करनी हो, नदी अथवा जल पार करना हो, औषधि का सेवन करना हो और ध्वनि सीखनी हो।

मारणे मोहने स्तंभे विद्वेषोच्चाटनं तथा।
प्रेरणा कर्षणे क्षोभदाने च क्रयविक्रये।।११३।।

मारण, मोहण अथवा स्तंभन करना हो, शत्रुता करनी हो, किसी को मन्त्रबल से उच्चाटण करना हो, किसी को प्रेरित करना हो, किसी को अपनी ओर आकर्षित करना हो, क्षोभ देना हो, दान देना हो, कुछ खरीदना अथवा वेचना हो।

खड्गहस्ते वैरियुद्धे भोगे वा राजदर्शने।
भोज्यस्थाने व्यवहारे क्रूरदीप्ति रवीशुभम्।।११४।।

खड्ग हाथ में लेकर शत्रु से युद्ध करना हो, भोग भोगना हो, राजा का दर्शन करना हो, भोजन के स्थान में जाना हो और कुछ क्रूर व्यवहार करना हो, इन सभी कार्यों में सूर्य-प्रवाह शुभ होता है।

भुक्त मात्रेण मंदाग्नौ स्त्रीणां वश्यादिकर्मणि।
शयने सूर्यवाहेण कर्त्तव्यं सर्वदा बुधैः।।११५।।

भोजन की मंदाग्नि हो, स्त्रियों को वश में करना हो और सोने के समय में सूर्य-प्रवाह शुभ होता है। इन कार्यों में पिंगला-नाड़ी को प्रवाहित करना चाहिए। ऐसा विद्वानों के लिए कहा गया है।

क्रूराणि सर्वकर्माणि चराणि विविधानि च।
तानि सिद्यन्ति सूर्येण नात्रकार्या विचारणा।।११६।।

सभी क्रूर कर्म एवं अन्य जो चर कर्म हैं, वे सभी सूर्य-प्रवाह में सिद्ध होते हैं। इसमें विचार नहीं करना चाहिए।

अथ सुषुम्ना कार्याणि-

सुषुम्ना-नाड़ी के प्रवाह के समय करने योग्य कार्य-

क्षणंवामे क्षणंदक्षे यदा वहति मारुतः।
सुषुम्ना सा च विज्ञेया सर्वकार्यहरा स्मृता।।११७।।

जिस समय स्वर क्षण में वामभाग में, क्षण में दाहिने भाग में प्रवाहित होता हो, तो उस समय समझना चाहिए कि सुषुम्ना प्रवाहित हो रही है। इस समय में किये गये सभी कार्य नाश करने वाले होते हैं।

तस्यां नाड्यां स्थितोवह्नि ज्वलतं कार्यभाविणम्।
विषुवंतं विजानीयात्सर्वकार्य विनाशनम्।।११८।।

सुषुम्ना–नाड़ी में अर्थात् सुषुम्ना–नाड़ी के प्रवाह–काल में अग्नि–तत्त्व काल–रूप प्रधान होता है, जो सभी कार्यों के फल को नाश कर देता है।

क्षणंवामें क्षणं दक्षे विषमं भावमादिशेत्।
विपरीतं फलं ज्ञेयं ज्ञातव्यं च वरानने।।११९।।

हे सुन्दर मुख वाली पार्वती! क्षण में स्वर बायें, क्षण में दायें प्रवाहित हो, तो विषम भाव का आदेश करें और इसका फल उलटा जानना चाहिए।

उभयोरेव संचारे विषुवंतं विदुर्बुधाः।
न कुर्यात्क्रूरं सौम्यानि तत्सर्व निष्फलं भवेत्।।१२०।।

सूर्य एवं चन्द्र दोनों नाड़ियों में स्वर एक साथ संचार करे, तो समय को विष के समान जानें। विद्वान पुरुष उस समय में कोई भी क्रूर अथवा शुभ कार्य न करे कदाचित् करे भी तो निष्फल हो।

जीविते मरणे प्रश्ने लाभालाभौ जयाजयौ।
विषुवे विपरीत्यं स्यात्संस्मरेज्जगदीश्वरम्।।१२१।।

जीवन–मृत्यु, लाभ–हानि, जय–पराजय के प्रश्न में विषम समय हो, तो सारा कार्य नष्ट हुआ जाने, उस समय नारायण का स्मरण करे।

ईश्वरः चिंतितं कार्य योगाभ्यासादि कर्मसु।
अन्य तत्र न कर्त्तव्यं पुण्यदानादि कोटिधा।।१२२।।

सुषुम्ना–नाड़ी के प्रवाह के समय ईश्वर का चिंतन करे और योगाभ्यासादि करे अन्य कोई कर्म न करे, पुण्य दान करे तो उसका करोड़ों गुना फल प्राप्त हो।

सूर्येण वहमानायां सुषुम्नायां मुहुर्मुहुः।
शापं दद्याद्वरंदद्यात्सर्वथा च तदन्यथा।।१२३।।

सूर्य–नाड़ी के प्रवाह में यदि सुषुम्ना–नाड़ी बार–बार प्रवाहित हो, तो उस समय शाप दें अथवा वर दें तो सब व्यर्थ हो जाये अथात् कुछ भी सिद्ध न हो।

शुभं किंचिन्न कर्त्तव्यं नाड़ीश्च कमणे तथा।
अन्यतत्र न कर्त्तव्यं पुण्यदानादि कोटिधा।।१२४।।

जिस समय नाड़ी परिवर्तित होती हो, उस समय शुभ अथवा अशुभ कार्य न करे, उस समय का किया हुआ करोड़ों पुण्यदान भी निष्फल हो।

विषमे संपादये यात्रा मनसापि न चिंतयेत्।
यात्राहानि करी तस्य मृत्युक्लेशौ न संशयः।।१२५।।

जब विषम स्वर प्रवाहित हो, तो उस समय यात्रा का विचार मन से भी नहीं करना चाहिए। उस समय की हुई यात्रा हानि करे और दुःख एवं मृत्यु दे। इसमें कोई सन्देह नहीं।

पुरा वामोर्ध्वतश्चन्द्रो दक्षाधः पृष्टतो रविः
पूर्णीरिक्ता विवेकोऽयं ज्ञातव्यो देशिकैः सदा।।१२६।।

प्रश्न करने वाला यदि सामने, बायें अथवा ऊँचे स्थान पर बैठा हो और इड़ा स्वर हो, एवं प्रश्न कर्ता यदि दायें, पीछे अथवा नीचे स्थान पर बैठा हो और पींगला स्वर हो, तो शुभ जनना चाहिए। इसके विपरीत हो तो अशुभ जानना चाहिए। इस प्रकार पूर्णा एवं रिक्ता का फल एवं काल विचार योगियों द्वारा जानने योग्य है।

ऊर्ध्ववामाग्रतो ज्ञेयो वामे च पथि स्थितः।
पृष्ठे दक्षे तथाध्यक्षा सूर्यवाहाग्रत शुभम्।।१२७।।

जिस समय चन्द्र–स्वर प्रवाहित हो उस समय यदि कोई पथिक आपकी बाईं ओर से आये अथवा यदि सूर्य–स्वर के प्रवाह–काल में कोई दाहिनी ओर से आये, तो समझिये कि वह शुभ संदेशवाहक है।

अनादि विषमां सन्धिं निराहारं निराकुला।
परे सूक्ष्मविलीयंते सासन्ध्या सन्धिरुच्यते।।१२८।।

यह तो अनादि काल की विषम सन्धि है अर्थात् जब सुषुम्ना–नाड़ी का प्रवाह होता है अर्थात् सुषुम्ना को निराहार तथा व्याकुलता से रहित माना जाता है। वह सूक्ष्म तत्त्वों में विलीन हो जाती है। इस के प्रवाह–काल में प्राणायाम करने वाला जीव सूक्ष्मरूप से उसमें लीन हो जाता है। इस प्रकार की संध्या जानने योग्य है।

न संध्या सन्धिमित्याहुः संध्यासन्धि निगच्छते।
विषुवत्सन्धिगा प्राणा सासंध्या सन्धिरुच्यते।।१२९।।

प्रातःसंध्या, मध्याह्नसंध्या और सायंकाल की संध्या को संध्या न जाने क्योंकि संध्या दिन और रात्रि की मिलन–बेला नहीं होती, अपितु विषम काल को संध्या

कहते हैं अर्थात् जब सुषुम्ना में प्राण का प्रवाह हो उसे संध्या कहते है।

न वेदं वेदमित्याहुर्वेदाद्वेदो न विद्यते।
परमात्मा विद्यते येन स वेदो वेद उच्यते।।१३०।।

वेद स्वयं वेद नहीं होते, साधना से जानने योग्य आत्मा को भी वेद नही कहते, जिसके द्वारा परमात्मा को जाना जाये उसी को वेद कहते हैं।

इति नांड़ी भेदः।

इसी के साथ नाड़ी भेद स्वरूप स्वर प्रकरण समाप्त हुआ।

....

द्वितीय अध्याय

तत्त्वनिर्णय–प्रकरण

अथ तत्त्व निर्णयः–

तत्त्वों का निर्णय–

श्रीदेव्युवाच–

देव देव महादेव सर्वसंसारतारकः।
स्थितस्त्वं दीपहृदये रहस्यं वद मे प्रभो।।१।।

श्री देवी शिव से तत्त्व ज्ञान को जानने के लिए प्रश्न करती हैं–

हे देवों के देव महादेव जी! तुम सारे जगत् के तारणहारे हो। तुम मेरे हृदय में दीपरूप स्थित होकर इस तत्त्व–ज्ञान के रहस्य को कहो।

ईश्वरउवाच–

स्वरज्ञानरहस्याच्चु न किंचिदिष्टदेवता।
स्वरज्ञान रतोयोगी सयोगी परमोमतः।।२।।

शिव ने कहा–

हे देवी! स्वर–ज्ञान के रहस्य का इष्टदेवता कोई भी नहीं। जो योगी स्वर–ज्ञान में तत्पर रहने वाला है, वही श्रेष्ठ योगी मानने योग्य है।

पंचतत्त्वाद्भवेत् सृष्टिः तत्ते तत्त्वं विलीयते।
पंचतत्त्वं परं तत्त्वं तत्त्वातीतं निरंजनम्।।३।।

पंचतत्त्वों से सृष्टि की रचना होती है तथा तत्त्व में ही पंचतत्त्व विलीन होते हैं। परम–तत्त्व जो है वह इन तत्त्वों से भिन्न है। वही निरंजन रूप परमेश्वर है।

तत्त्वानां तत्त्वविज्ञेयं सिद्धिर्योगेन योगीनाम्।
भूतानां दृष्टचिह्नानि जानन्ति हि स्वरोत्तमाः।।४।।

इन पाँचों तत्त्वों का सार जानने योग्य है, इनका सार जानने से योगियों को सिद्धि की प्राप्ती होती है। जो इन पाँचों तत्त्वों के चिन्हों कों जानते हैं, वही उत्तम स्वरों कों जानते हैं।

पुरोवामूर्ध्वतश्चन्द्रो दक्षाधः पृष्टतो रविः।
पूर्णारिक्ता विवेकोऽयं ज्ञातव्यो देशिकैः सदा।।५।।

प्रश्न करने वाला यदि सामने, बायें अथवा ऊँचे स्थान पर बैठा हो और इड़ा–नाड़ी में स्वर हो, एवं प्रश्न कर्ता यदि दायें, पीछे अथवा नीचे स्थान पर बैठा हो और पींगला–नाड़ी में स्वर हो, तो शुभ जानना चाहिए, इसके विपरीत हो तो अशुभ जानना चाहिए। इस प्रकार पूर्णा एवं रिक्ता का फल एवं कालविचार योगियों द्वारा जानने योग्य है।

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।
पंचभूतात्मकं सर्व यो जानाति स पूजितः।।६।।

पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश तत्त्व के रहस्य को जो जानता है। वह पूजने योग्य है।

सर्वलोकस्य जीवानां न देहे भिन्न तत्त्वम्।
भूर्लोकात्सत्यपर्यन्तं नाडीभेदः पृथक् पृथक्।।७।।

सभी लोक के जीवों के देह विषय भिन्न-भिन्न तत्त्व नहीं हैं। भूलोक से लेकर सत्यलोक पर्यन्तं नाड़ी के जो भेद है, वह भिन्न-भिन्न है।

वामे वा दक्षिणे वाऽपि उदयाः पंचकीर्तिताः।
अष्टधा तत्त्वविज्ञानं शृणु वक्ष्यामि सुन्दरी।।८।।

बायें अथवा दायें जो पंचतत्त्वों का उदय कहा है, वह आठ प्रकार का तत्त्व-ज्ञान कहता हूँ। हे सुन्दरी! तू निश्चय करके सुन।।

प्रथमे तत्त्व विज्ञायो द्वितीये श्वास सन्धिषु।
तृतीये स्वरचिह्नानि चतुर्थे स्थानमेव च।।९।।

पहले में तत्त्वों की संख्या एवं नाम, दूसरे में श्वास सन्धि। तीसरे में स्वर के चिन्ह, चौथे में इनके स्थानों का वर्णन है।

पंचमे तस्य वर्णाश्च षष्ठे तु प्राणमेव च।
सप्तमे स्वाद संयुक्तमष्टमे गतिलक्षणम्।।१०।।

पाँचवे में तत्त्व का रंगरूप, छठे में प्राण की पहचान। सातवे में तत्त्व का स्वाद, आठवे में गति और लक्षण कहे हैं।

एवमष्टविधं प्राणं विषुवंतं चराचरम्।
स्वरात्परतरं देवि नान्यथा त्वंबुजासने।।११।।

हे कमलवासिनी! ऐसे आठ प्रकार से प्राण को विचारणा चाहिए। तत्त्व एवं स्वर से परे अन्य कुछ भी नहीं।

ईक्षितव्यं प्रयत्नेन यदा प्रत्यूषकालतः।
कालस्य वंचनार्थाय कर्मकुर्वन्ति योगिनः।।१२।।

स्वर को प्रयत्न से प्रातःकाल में देखना चाहिए। क्योंकि इस काल को ठगने के लिए योगीजन कर्म करते हैं।

श्रुत्यौरंगुष्टकौ मद्यांगुल्यौ नासापुटद्वये।
वदने प्रांत्यके चान्यांगुलीशेषे दृगंतयोः।।१३।।

दोनो हाथों के अंगुष्ठ से कानों को बन्द कर मध्य अंगुलियों से नासिका के दानों पुट बन्द कर और ओष्ठों को अनामिका अंगुलियों से बन्द कर एवं तर्जनी अंगुलियों से नेत्रों को बन्द करके योगी तत्त्व को पहचान लेते हैं।

अस्यांतस्तु पृथिव्यादि तत्त्वज्ञानं भवेत्क्रमात्।
पीतश्वेतारुणश्यामैर्विन्दुभिर्निरुपाधिखम्।।१४।।

पहले बताये गये अभ्यास का पालन जो करता है, उसको अन्त में तत्त्वों के वर्णो की पहचान क्रम से होती है। पीला रंग पृथिवी-तत्त्व का, सफेद रंग जल-तत्त्व का, लाल रंग तेज-तत्त्व का, श्याम रंग वायु-तत्त्व का और अनेक रंग के बिन्दुओं से युक्त उपाधि रहित आकाश तत्त्व को पहचाने।

दर्पनेन समालोक्य तत्र श्वासं च निक्षिपेत्।
आकारैस्तु विजानीया तत्त्वभेदं विचक्षणैः।।१५।।

अथवा विद्वान दर्पण में देख करके उसमें श्वास छोड़े। जिस प्रकार का आकार बने उसे देखकर उस तत्त्व को पहचाने।

चतुरस्रं चार्धचन्द्रं त्रिकोणं वर्तुलंस्मृतम्।
विन्दुभिस्तु नभोज्ञेयं आकारैस्तत्त्व लक्षणम्।।१६।।

चतुष्कोणाकार पृथ्वी-तत्त्व, अर्धचन्द्राकार जल-तत्त्व, त्रिकोणाकार तेज-तत्त्व, गोलाकार हो तो वायु-तत्त्व और अनेक बिन्दुओं वाला आकार बने तो आकाश-तत्त्व जानना चाहिए।

मध्ये पृथ्वी ह्यधश्चापश्चोर्ध्वं वहति चानिलः।
तिर्यग्वायुप्रवाहश्च नभो वहति संक्रमे।।१७।।

तत्त्वों की गति इस प्रकार है- पृथ्वी-तत्त्व का प्रवाह मध्य में, जल-तत्त्व नीचा चलता है, तेज-तत्त्व ऊँचा चलता है, वायु-तत्त्व तिर्छा चलता है और आकाश-तत्त्व चारों ओर चलता है।

आपः श्वेतः क्षितिः पीतः रक्तवर्णो हुताशनः।
मारुतो नीलजीमुत आकाशं सर्ववर्णकम्।।१८।।

जल-तत्त्व सफेद है, पृथ्वी पीली है, तेज-तत्त्व लाल है, वायु-तत्त्व बादल के समान नीला है, और और आकाश सभी रंग वाला है।

प्रथमेवहते वायु द्वितीये वहति अनलः
तृतीये च वाहेन्माहेयः चतुर्थे वारुणं वहेत्।।१९।।

प्रथम में वायु-तत्त्व वहता है, दूसरे में अग्नि-तत्त्व वहता है, तीसरे में पृथ्वी-तत्त्व वहता है, चौथे में जल-तत्त्व वहता है और पाँचवे में आकाश-तत्त्व चलता है।

स्कंदस्थितो द्वयोवह्निर्नाभिमूले प्रभंजनः।
जानुदेशे क्षितिस्तोयं पदांते मस्तके नभः।।२०।।

यह जो तेज-तत्त्व है वह दोनों कन्धों में स्थित रहता है, वायु-तत्त्व नाभी के मूल में स्थित होता है, पृथ्वी-तत्त्व जानुओं में स्थित होता है, जल-तत्त्व पैरों के अन्त में रहता है और आकाश-तत्त्व मस्तक में रहता है।

माहेयं मधुरं स्वादं कषायं जलमेव च।
तिक्तं तेजः समीरोऽमलं आकाशं कटुकं तथा।।२१।।

पृथ्वी-तत्त्व का स्वाद मीठा, जल-तत्त्व का कषाय, तेज-तत्त्व का तीक्षा, वायु-तत्त्व का अम्ल एवं आकाश-तत्त्व का स्वाद कड़वा जानें।

अष्टांगुलं वहेद्वायुरनलश्चतुरंगुलः।
द्वादशांगुलं माहेयं वारुणः षोडशांगुलम्।।२२।।

वायु-तत्त्व आठ अंगुल प्रमाण चलता है, अग्नि-तत्त्व चार अंगुल प्रमाण चलता है, पृथ्वी-तत्त्व बारह अंगुल प्रमाण चलता है, एवं जल-तत्त्व सोलह अंगुल प्रमाण चलता है।

ऊर्ध्वे मृत्युरधः शान्तिः तिर्यगुच्चाटने तथा।
मध्येस्तंभं विजानीयान्नभः सर्वत्रमध्यगः।।२३।।

स्वर ऊपर को चले तो मृत्यु हो, स्वर नीचे को चले तो शान्ति हो, स्वर तिर्छा चले तो उच्चाटन हो, स्वर सीधा चले तो स्तंभ हो तथा आकाश तत्त्व सभी कालों में सभी तत्त्वों में हुआ फल जान।

पृथिव्यां स्थिरकर्माणि चरकर्माणि वारुणे।
तेजसि सर्वकर्माणि मारणोच्चाटनेऽनिले।।२४।।

पृथ्वी-तत्त्व में स्थिर कर्मों को करे, जल-तत्त्व में चर कर्मों को करे, तेज-तत्त्व में सभी कार्यों को करे, वायु-तत्त्व में मारण और उच्चाटन कर्म करे।

व्योम्नि न किंचित्कर्त्तव्यमभ्यासेद्योगसेवया।
शून्यता सर्वकार्येषु नात्रकार्या विचारणा।।२५।।

आकाश-तत्त्व की जब प्रधानता हो तो उस समय में कुछ नहीं करना चाहिए, केवल योगाभ्यास करना चाहिए। आकाश-तत्त्व में अन्य सभी कार्य निष्फल होते हैं, इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिए।

पृथ्वीजलाभ्यां सिद्धिः स्यान्मृर्त्युवह्नौ क्षयोऽनिले।
नभसो निष्फलं सर्व ज्ञातव्यं तत्त्व वेदिभिः।।२६।।

पृथ्वी-तत्त्व और जल-तत्त्व में कार्यसिद्धि हो, अग्नि-तत्त्व में मृत्यु हो, वायु-तत्त्व में क्षय हो, आकाश-तत्त्व में कार्य निष्फल हो। इस प्रकार सभी तत्त्ववादियों की मान्यता है।

चिरलाभः क्षितिर्ज्ञेयः तत्क्षणात्तोयस्तत्त्वतः।
हानिः स्याद्वह्निवाताभ्यां नभसो निष्फलं भवेत्।।२७।।

पृथ्वी-तत्त्व विलम्ब से फल देता है, जल-तत्त्वं तत्क्षण फल देता है, अग्नि-तत्त्व और वायु-तत्त्व हानि करते हैं, आकाश-तत्त्व कुछ फल नहीं देता है।

पीतः शनैर्मध्यवाही हनुंयावद्गुरु ध्वनिः।
ऊर्ध्वगः पार्थिवौ वायु स्थिरकार्य प्रसादकः।।२८।।

पृथ्वी-तत्त्व का वायु पीले रंग वाला है, शनैः शनैः मध्य में प्रवाहित होता है, ठोडी पर्यन्त बड़े शब्द वाला ऊँचा होकर चलता है, इसमें स्थिर कार्य करे तो सिद्ध हो।

अधोवाही गुरुध्वनिः शीघ्रगः शीतलः सितः।
यः षोडशांगुलोवायुः स आपः शुभकर्मकृत्।।२९।।

जल-तत्त्व का वायु नीचा होकर बड़े शब्द से शीघ्रता से चलने वाला और शीतल है, सफेद रंग वाला इस समय प्रश्वास की लंबाई सोलह अंगुल प्रमाण रहती है। वह, शुभ कर्म को शीघ्र सिद्ध करता है।

आवर्तगश्चात्युष्णश्च शोनाभश्चतुरंगुलः।
उर्ध्ववाही च यः क्रूरकर्मकारी सतैजसः।।३०।।

अग्नि-तत्त्व वाला वायु टेढ़ा-मेढ़ा प्रवाहित होता है और अति गर्म स्वर्ण की भान्ति आभा वाला होता है, चार अंगुल प्रमाण की गति रहती है, इसका प्रवाह उर्ध्वगामी होता है। वह क्रूर कर्म सिद्ध करता है।

उष्मीशीतकृष्णवर्णः तिर्यग्गामी चाष्टांगुलः।
वायुः पवनसंज्ञोऽयं चरकर्म सुसिद्धिदः।।३१।।

वायु-तत्त्व का जो वायु है वह गर्म और ठंडा, काले रंग वाला, तिरछी चाल से आठ अंगुल प्रमाण वहता है। चर कार्यो में सिद्धि प्राप्त करवाता है।

यः समीरः समरसः सर्वतत्त्वगुणावहः।
अम्बरं तं विजानीयाद्योगिनां योगदायकम्।।३२।।

आकाश-तत्त्व में वायु समान होकर वहता है। यह अन्य सभी तत्त्वों के गुणों को धरता है और योगियों को ज्ञान देने वाला है। क्योंकि इसकी प्रधानता में योगी अपनी साधना में सिद्धि प्राप्त करते हैं।

अन्य मत से तत्त्वों की पहचान-

पीतं चैव चतुष्कोणं मधुरं मध्यमाश्रितम्।
भोगदं पार्थिवं तत्त्वं प्रवाहे द्वादशांगुलम्।।३३।।

पृथ्वी-तत्त्व का रंग पीला, आकार चतुष्कोण, स्वाद मधुर, सीधा चलता है तथा प्रश्वास बारह अंगुल प्रमाण लम्बा होता है। भोग-विलास को देने वाला होता है।

श्वेतमर्धेंदुसकाशं स्वादुकाषायमोदकम्।
लाभकृद्वारुणं तत्त्वं प्रवाहे षोडशांगुलम्।।३४।।

जल-तत्त्व का रंग सफेद, आकार अर्धचन्द्र जैसा, स्वाद कषाय, ऊँची गति वाला तथा प्रश्वास सोलह अंगुल प्रमाण वहने वाला। शीघ्र लाभ देने वाला होता है।

रक्तं त्रिकोणं तिक्तं स्वादूर्ध्वमार्गप्रवाहकम्।
दीप्तं च तैजसं तत्त्वं प्रवाहे चतुरंगुलम्।।३५।।

अग्नि-तत्त्व का रंग लाल, आकार त्रिकोण, स्वाद तीक्ष्ण, ऊपर की ओर चलने वाला, प्रकाशमान। प्रश्वास चार अंगुल प्रमाण वहने वाला होता है। इसकी प्रधानता में किये गये कार्य सिद्ध नहीं होते।

नीलं च वर्तुलाकारं स्वाद्वम्लं तिर्यगाश्रितम्।
चपलं मारुतं तत्त्वं प्रवाहे-अष्टांगुलं स्मृतम्।।३६।।

वायु-तत्त्व का रंग नीला, आकार गोल, स्वाद अम्ल, चंचल एवं तिर्छी गति वाला तथा प्रश्वास आठ अंगुल प्रमाण वहने वाला कहा गया है।

वर्णाकारं स्वादु वहमव्यक्तं सर्वगामिनम्।
मोक्षदं नाभसं तत्त्वं सर्वकार्येषु निष्फलम्।।३७।।

आकाश-तत्त्व अनेक रंग वाला, अव्यक्त स्वाद वाला, सर्वव्यापी, केवल योगियों को मुक्ति देने वाला एवं सभी कार्यों को असफल करने वाला है।

पृथां जले शुभं तत्त्वे तेजो मिश्रफलोदये।
हानिमृत्युकरौ पुंसांमशुभौ व्योम मारुतौ।।३८।।

पृथ्वी-तत्त्व और जल-तत्त्व शुभ होते हैं, अग्नि-तत्त्व का फल मिश्रित होता है, वायु-तत्त्व और आकाश-तत्त्व हानि एवं मृत्यु देने वाले हैं तथा पुरुषों के लिए अशुभ फल देने वाले होते हैं।

आपः पूर्वे पश्चिमे पृथ्वी तेजश्च दक्षिणे तथा।
वायुश्चोत्तरदिग्ज्ञेयो मध्यकोणे गतं नभः।।३९।।

जल-तत्त्व में पूर्व दिशा में सिद्धि जाने। पृथ्वी-तत्त्व में पश्चिम दिशा में सिद्धि जाने। अग्नि-तत्त्व में दक्षिण दिशा में सिद्धि जाने। वायु-तत्त्व में उत्तर दिशा में सिद्धि जाने एवं आकाश-तत्त्व के विषय में मध्य मण्डल में सिद्धि जाने।

चन्द्रे पृथ्वीजलैस्यातां सूर्यचाग्निर्यदाभवेत्।
तदा सिद्धिर्नसंदेहः सौम्यासौम्येषु कर्मसु।।४०।।

चन्द्रमा के स्वर में पृथ्वी-तत्त्व और जल-तत्त्व हों अथवा पिंगला-नाड़ी में अग्नि-तत्त्व चलता हो, तब सभी शुभ-अशुभ कार्यों में सिद्धि होती है। इसमें सन्देह नहीं।

लाभः पृथ्वी कृतोऽह्निः स्यान्निशायां लाभकृज्जले।
वह्नौ मृत्युः क्षतिर्वायौ नभस्थानं दहेत्क्वचित्।।४१।।

दिन में पृथ्वी-तत्त्व लाभकारी है, रात में जल-तत्त्व लाभकारी है। अग्नि तत्त्व में मृत्यु हो, वायु तत्त्व विनाश करता है, आकाश तत्त्व कदाचित् स्थान का दहन करे।

जीवितव्यो जये लाभे कृष्यां च धनकर्षणे।
मन्त्रार्थे युद्ध प्रश्ने च गमनागमने तथा।।४२।।

शिव जी कहते हैं- कि अब रोगी के जीने, जय-पराजय, कृषी, धन प्राप्ति, मन्त्रणा के सिद्ध होने, युद्ध के प्रश्न एवं जाने-आने की बात करता हूँ।

आयाति वारुणे तत्त्वे तत्रस्थोऽपि शुभं क्षितौ।
प्रयाति वायुतोऽन्यत्र हानिर्मृत्यु नभोऽनिले।।४३।।

जल-तत्त्व में शीघ्र सिद्धि हो, पृथ्वी-तत्त्व में सभी कार्य शुभ हों, वायु-तत्त्व में अन्य स्थान को जाना पड़े और आकाश-तत्त्व एवं अग्नि-तत्त्व में हानि और मृत्यु हो।

पृथिव्यां मूलचिंतास्याज्जीवस्य जलवातयोः।
तेजसिधातु चिंतास्याच्छून्यमाकाशतो वदेत्।।४४।।

पृथ्वी-तत्त्व में मूल चिंता जाने, जल-तत्त्व और वायु-तत्त्व में जीव चिंता जाने। अग्नि-तत्त्व में धातु चिंता जाने और आकाश तत्त्व में शून्य जाने।

पृथिव्यां बहुपादास्युर्द्विपदस्तोय वायुतः।
तेजस्वी च चतुष्पादा नभसि पादवर्जितः।।४५।।

पृथ्वी-तत्त्व की जब प्रधानता हो, तो अनेक पाँव वाला प्रश्न कहे, जल-तत्त्व और वायु-तत्त्व के चलते दो पाँव वाला प्रश्न कहे। अग्नि-तत्त्व चलते चतुष्पाद वाला प्रश्न कहे और आकाश तत्त्व के चलते पाद रहित प्रश्न जाने।

कुजो वह्निः रविः पृथ्वी सौरिरापः प्रकीर्तितः।
वायु स्थानस्थितो राहुः दक्षरंध्र प्रवाहकः।।४६।।

मंगल अग्नि-तत्त्व में स्थित है, सूर्य पृथ्वी-तत्त्व में स्थित है, शनैश्चर जल-तत्त्व में स्थित है, राहु वायु-तत्त्व में स्थित होता है। पिंगला के चलते ग्रहों की इस प्रकार की स्थिति जाननी चाहिए।

जलचन्द्रो बुधः पृथ्वी गुरुर्वातः सितोऽनलः।
वामनाड्यां स्थिताः सर्वे सर्वकार्येषु निश्चिता।।४७।।

इड़ा-नाड़ी के चलते जल-तत्त्व में चन्द्रमा रहता है, पृथ्वी-तत्त्व में बुध रहता है, वायु-तत्त्व में वृहस्पति रहता है, तेज-तत्त्व में शुक्र रहता है। वामनाड़ी में स्थित होकर किये गये सभी कार्य निश्चित होते है।

....बुधोजलार्दिदुशुको वह्नीरवि कुजस्तथा।
वायुराहुः शनैर्व्योम्नि गुरुरेव प्रकीर्तितः।।४८।।

सुषुम्ना-नाड़ी के चलते समय बुध पृथ्वी-तत्त्व में रहता है, चन्द्रमा और शुक्र जल-तत्त्व में रहते हैं, सूर्य और मंगल अग्नि-तत्त्व में रहते हैं, वायु-तत्त्व में राहु और शनैश्चर रहते हैं, वृहस्पति आकाश-तत्त्व में कहा है।

पार्थिवीमुलविज्ञानं जीवेज्ञानं जलेतथा।
आग्नेयं धातुविज्ञानं व्योम्निशून्यं विनिर्दिशेत्।।४९।।

पृथ्वी-तत्त्व से मूल ज्ञान जाने अर्थात् पृथ्वी-तत्त्व की प्रधानता के समय में सामान्य कार्यो में सफलता प्राप्त होती है, जल-तत्त्व से जीवज्ञान जाने अर्थात् जल-तत्त्व की प्रधानता के समय जीव सम्बन्धी शुभ कार्यो में सफलता प्राप्त होती है। अग्नि-तत्त्व से धातुज्ञान जाने अर्थात् अग्नि-तत्त्व की प्रधानता के समय में धातु सम्बन्धी कार्यो में सफलता प्राप्त होती है, आकाश-तत्त्व शून्य का निर्देश करता है।

तुष्टिः पुष्टिरतिः कीड़ा जयहास्य धराजले।
तेजो वायुश्च सुप्राज्ञः ज्वरकंप प्रवासिनः।।५०।।

यदि पृथ्वी–तत्त्व अथवा जल–तत्त्व की प्रधानता हो तो प्रश्नकर्ता को तुष्टी, पुष्टी, प्रीति, कीड़ा, जय और हास्य की प्राप्ति हो। यदि प्रश्न के समय तेज–तत्त्व अथवा वायु–तत्त्व का प्रवाह हो तो श्रेष्ठ बुद्धि, ज्वर, कंपन और विदेश जाना पड़े।

गतायुर्मृत्युराकाशो चन्द्रावस्थाः प्रकीर्तिताः।
द्वादशैता प्रयत्नेन ज्ञातव्याः दैशिकैः सदा।।५१।।

आकाश–तत्त्व की प्रधानता में यदि कोई प्रश्न करे तो उसकी हीन आयु और मृत्यु हो। इस प्रकार ऊपरयुक्त बारह प्रकार के प्रश्न पूछते समय प्रवाहित प्रधान तत्त्व को जानकर साधक जन प्रश्न के उत्तर को जान लेते हैं।

पूर्वायां पश्चिमेवामे उत्तरस्यां यथाक्रमम्।
पृथिव्यादीनि भूतानि बलिष्टानि विनिर्दिशेत्।।५२।।

जब स्वर वामभाग में सक्रिय हो, तो पूर्व दिशा को जाने में पृथ्वीतत्त्व बलवान है, पश्चिम दिशा में जल–तत्त्व बलवान है। दक्षिण दिशा में तेज–तत्त्व बलवान है, उत्तर दिशा में वायु–तत्त्व बलवान है और मध्य मण्डल में आकाश–तत्त्व बलवान है।

पृथिव्यापस्तथातेजो वायुराकाशमेव च।
पंच भूतात्मकं देहं ज्ञातव्यं च वरानने।।५३।।

हे सुन्दरी! यह शरीर पंचतत्त्वों का मिला–जुला रूप है। अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश इन पाँचो से ही यह शरीर बना है।

अस्थिमांस त्वचानाड़ी रोमंचैव तु पंचमम्।
पृथ्वी पंचगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम्।।५४।।

ब्रह्मज्ञान के अनुसार पृथ्वी-तत्त्व के पाँच गुण शरीर में विद्यमान हैं- हड्डी, माँस, चर्म, नाड़ी और पाँचवा रोम।

शुक्रशोणितमज्जा च मूत्रं लाला च पंचमम्।
आपः पंचगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम्।।५५।।

ऐसा ब्रह्मज्ञान कहता है- कि जल-तत्त्व शरीर में पाँच रूपों में विद्यमान है, वे हैं- वीर्य, रक्त, मज्जा, मूत्र और लार।

क्षुधा तृष्णा तथा निद्रा कान्तिरालस्यमेव च।
तेजः पंचगुणाः प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम।।५६।।

ब्रह्मज्ञान के अनुसार देह में अग्नि-तत्त्व के पाँच गुण होते हैं- भूख, तृष्णा, निद्रा, कान्ति और आलस्य।

धावनं चलनं गन्धं संकोचनप्रसारणम्।
वायुः पंचगुणाः प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम।।५७।।

इसी प्राकार शरीर के विषय में वायु-तत्त्व के भी पाँच गुणों का वर्णन ब्रह्मज्ञान के द्वारा किया गया है- दौड़ना, चलना, सुगन्ध प्राप्त करनी, संकुचित होना और विस्तार होना।

रागद्वेषस्तथा लज्जा भयं मोहश्च पंचमम्।
नभः पंचगुणाः प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम।।५८।।

ब्रह्मज्ञान के अनुसार आकाश-तत्त्व के पाँच गुण इस प्रकार हैं- प्रीति, द्वेष, लज्जा, भय और मोह।

पृथिवी पलं च पंचाशच्चत्वारिंशदापस्तथा।
तेजस्त्रींशद्विजानीया वायुर्विंशति दशनभः।।५९।।

इस देह में पृथ्वी-तत्त्व पचास पल प्रमाण रहता है, चालीस पल जल-तत्त्व, तीस पल तेज-तत्त्व, वायु-तत्त्व बीस पल और दस पल प्रमाण आकाश-तत्त्व रहता है।

पृथ्वी चिरकाली च लाभश्चापे क्षणाद्भवेत्।
जायते पवनात्स्वल्प सिद्धेप्यग्नौ विनश्यति।।६०।।

पृथ्वी-तत्त्व की सक्रियता में देर से लाभ मिलता है, जल-तत्त्व शीघ्र लाभ करे, वायु-तत्त्व थोड़ा लाभ करे और अग्नि तत्त्व में सिद्ध हुआ कार्य भी नष्ट हो।

पृथ्वीपंच अपांवेदो गुणस्तेजो द्विवायुतः
नभ-एकं गुणंचैव तत्त्वज्ञानमिदं भवेत्।।६१।।

पृथ्वी-तत्त्व की सक्रियता हो तो पाँचगुणा फल होता है, जल-तत्त्व चारगुणा फल दे, तेज-तत्त्व तीनगुणा फल दे, वायु-तत्त्व द्विगुणा फल दे और आकाश-तत्त्व एकगुणा फल प्रदान करे। इस प्रकार तत्त्वों का ज्ञान होता है।

फूत्काररक्तप्रस्फुटिता विद्धोरण्य पतिताधरा।
ददाति सर्वकार्येषु अवस्था सदृशं फलम्।।६२।।

फोकी मृत्तिका वाली भूमि हो अथवा लाल रंग की मृत्तिका वाली भूमि हो, भूमि फटी हुई हो, भेदी हुई भूमि हो अथवा वन की बंजर भूमि हो। तत्त्वों के प्रमाण से अपनी अवस्था के समान सभी कार्यों में फल देती है।

(दोहा-भेद गुरु सोंपायो नहीं विन गुरु लष्यो नहीं ज्ञान।
सूर्य पंडित विनती करे क्षमा करो भगवान्।।)

धनिष्ठा रोहिणी ज्येष्ठानुराधा श्रवणस्तथा।
अभिजिच्चोत्तराषाढा पृथ्वी तत्त्वमुदाहृतम्।।६३।।

धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित् और उत्तराषाढ़ा पृथ्वी-तत्त्व में ये नक्षत्र होते हैं।

पूर्वाषाढातथाश्लेषा मूलमार्द्रा च रोहिणी।
उत्तराभाद्रपत्तोयतत्त्वं शतभिषा प्रिये।।६४।।

हे प्रिये! जल-तत्त्व में पूर्वाषाढ़ा, अश्लेषा, मूला, आर्द्रा, रोहिणी, उत्तरा, भाद्रपदा और शतभिष नक्षत्र रहते हैं।

भरणीकृतिका पुष्यो मघा पूर्वा च फाल्गुणी।
पूर्वाभाद्रपदा स्वाति तेजस्तत्त्वमिति प्रिये।।६५।।

हे प्रिये! अग्नि-तत्त्व में भरणी, कृतिका, पुष्य, मघा, पूर्वफाल्गुणी, पूर्वभाद्रपदा और स्वाति नक्षत्र रहते हैं।

विशाखोत्तर फाल्गुण्यौ हतश्चित्रा पुनर्वसुः।
अश्विनी मृगशीर्षे च वायु तत्त्वमुदाहृतम्।।६६।।

वायु-तत्त्व में विशाखा, उत्तराफाल्गुणी, हस्तचित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी और मृगशिरा नक्षत्र रहते हैं।

वहनाड़ी स्थितो दूतो यत्पृच्छति शुभाशुभम्।
तत्सर्व सिद्धिमायाति शून्ये शून्यं न संशयः।।६७।।

प्रश्न पूछने वाला वहती नाड़ी की ओर बैठकर जो कुछ शुभ-अशुभ पूछे वह सभी सिद्ध होगा। यदि शून्य की ओर बैठकर पूछे तो कुछ भी सिद्ध न हो। इसमें संशय नहीं।

तत्त्वे रामो जयं प्राप्तः सुतत्त्वे च धनंजयः।
कौरवानिहताः सर्वे युद्धे तत्त्वविपर्यये।।६८।।

तत्त्व के अनुकूल प्रवाह के बल से रामचन्द्र ने रावण को पराजित किया, इसी प्रकार तत्त्व के विपरीत प्रवाह के कारण कौरव युद्ध में मारे गये।

जन्मांतरीय संस्कारात्प्रसादादथवा गुरोः।
केषां चिज्जायते तत्त्वे वासना विमलात्मनाम्।।६९।।

हे पार्वती! जन्मान्तरों के संस्कारों से जिनके अन्तःकरण शुद्ध हों। वैसे गुरुओं की कृपा से कुछ पुरुषों को तत्त्व-ज्ञान में वासना होती है।

अथ पंचतत्त्वज्ञानम्-

लं बीजं धरणीं ध्यायेच्चतुरस्रां सुपीतभाम्।
स्वगंधस्वर्णवर्णत्वमारोग्यं देहलाघवम्।।७०।।

पंचतत्त्वों के ज्ञान का वर्णन-

'लं' पृथ्वी-तत्त्व का बीजमन्त्र है। साधक इस मन्त्र की सहायता से पृथ्वी-तत्त्व को ध्याये, तो सुन्दर पीला, सुगंधवाला, सुवर्ण की भान्ति वर्ण वाला, आरोग्य देने वाला, एवं देह को हल्का करने वाला हो।

वं बीजं वरुणं ध्यायेदर्धचन्द्रं शशिप्रभम्।
क्षुत्तृष्णादि सहिष्णुत्वं जलमध्ये च मज्जनम्।।७१।।

'वं' जल-तत्त्व का बीजमन्त्र है। साधक इस मन्त्र की सहायता से जल-तत्त्व को ध्याये, तो अर्द्धचन्द्रमाकार की भान्ति शोभा वाला हो, भूख प्यास को सहने वाला हो, जल पर विजय प्राप्त करे।

रं बीजं शिखिनं ध्यायेत्त्रिकोणमरुणप्रभम्।
वह्वन्नपानभोक्तृत्वमातपाग्नि सहिस्णुता।।७२।।

'रं' अग्नि-तत्त्व का बीजमन्त्र है। योगी इस मन्त्रं की सहायता से त्रिकोण और और लाल रंग प्रकाशमान वाले अग्नि-तत्त्व को ध्याये, तो बहुत अन्नपान को पचाने वाला और धूप और अग्नि को सहने वाला हो।

यं बीजं पवनं ध्यायेत्वर्तुलश्यामलप्रभम्।
आकाशं गमनाद्यं च पक्षिबद्गमनं तथा।।७३।।

'यं' वायु-तत्त्व का बीजमन्त्र है। इसका आकार गोलाकार है, श्याम कान्ति वाला है, साधक इस मन्त्र की सहायता से वायु-तत्त्व को ध्याये, तो आकाश में उडने वाले पक्षि के समान गति वाला हो।

हं बीजं गगनं ध्यायेन्निराकारं बहुप्रभम्।
ज्ञानं त्रिकालविषयं ऐश्वर्यमाणिमादिकम्।।७४।।

'हं' आकाश-तत्त्व का बीजमन्त्र है। आकार रहित है, अनेक वर्ण वाला, तीनों कालों का विषय होता है। साधक इस मन्त्र की सहायता से आकाश-तत्त्व को ध्याये, तो प्राणायाम के बल से अणिमा आदि अष्टसिद्धियों को प्राप्त करता है।

स्वरज्ञानी नरोयत्र धनं नास्ति ततः परम्।
गम्यते स्वरज्ञानेन अनायासफलं लभेत्।।७५।।

जिस स्थान पर स्वर-ज्ञान को जानने वाला पुरुष हो, उससे परे अन्य कोई धन नहीं। स्वर-ज्ञान को जानने वाले को सभी ज्ञान अनायास ही प्राप्त होते हैं।

इति तत्त्व ध्यानम्।

अथ युति विषयः–

श्रीदेव्युवाच–

देवदेवमहादेव महाज्ञानं स्वरोदयम।
त्रिकालविषयं चैव कथं भवति शंकर।।७६।।

अब प्रश्न–युति सुनने के लिए देवी जी देवों के देव महादेव से पूछती है–

हे देवों के देव महादेव! स्वरोदय–ज्ञान सबसे बड़ा ज्ञान है, और इस को जानने वाला सबसे बड़ा ज्ञानी। अब मुझे यह बताने की कृपा करें कि त्रिकाल–ज्ञान जो भूत, भविष्य और वर्तमान का व्यवहार है इस ज्ञान को कैसे प्राप्त यिा जा सकता है।

ईश्वर उवाच–

अर्थकालजयप्रश्नं शुभाशुभमिति त्रिधा।
ऐतत्त्रिकालविज्ञानं नान्यद्भवति सुन्दरि।।७७।।

महादेव जी ने कहा–

हे सुन्दरी! प्रश्न तीन प्रकार का होता है एक धनपदार्थ प्राप्त होने का, दूसरा जन्म–मरण देखने का, तीसरा जय–हानि विचार का। यह जो शुभाशुभ तीन प्रकार से देखा जाता है। वह त्रिकाल–ज्ञान स्वरोदय शास्त्रविद्या के बिना संभव नहीं। अर्थात् स्वरोदय के ज्ञान के बिना इन प्रश्नों को समझना सम्भव नहीं है।

तत्त्वे शुभाशुभं कार्यं तत्त्वे जयपराजयः।
तत्त्वे समर्घ महार्घ तत्त्वं त्रिपदमुच्यते।।७८।।

तत्त्वों के अनुसार शुभाशुभ कार्य जाना जाता है, तत्त्व के अनुसार जय और पराजय देखे, तत्त्व के बल से सस्ता और महंगा भाव जाने। इस प्रकार तत्त्व त्रिपक्षीय होते हैं।

श्रीदेव्युवाच–

देवदेव महादेव सर्वसंसारसागरे।
किं नराणां परंमित्रं सर्वकार्यार्थसाधकम्।।७९।।

देवी ने कहा–

हे देवों के देव! मनुष्यों का समस्त संसार में परम मित्र कौन है, एवं सभी कार्यों को सिद्ध करने वाला क्या है। उसको आप कहो।

श्रीशिवं उवाच–

प्राण एव परंमित्रं प्राण एव परः सखाः।
प्राणतुल्यपरोबंधुर्नास्ति नास्ति वरानने।।८०।।

श्रीशिव ने कहा–

हे सुन्दर मुख वाली! नरों के प्राण अपने परम मित्र है और प्राण ही परम बन्धु है। प्राण के समान समस्त विश्व में कोई अन्य बन्धु नहीं है।

श्रीदेव्युवाच–

कथं प्राणस्थितो वायुर्देहे किं प्राणरूपकम्।
तत्त्वेषु संचरन्प्राणो ज्ञायते योगिभिः कथम्।।८१।।

देवी ने पूछा–

कैसे देह में प्राण स्थित हैं और देह का वायु किस रूप वाला है? समस्त तत्त्वों में किस प्रकार प्राण कार्य करता है? योगियों द्वारा प्राण–वायु की प्रक्रिया का ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाता है?

श्रीशिव उवाच–

काया नगर मध्ये तु मारुतो रक्षपालकः।
प्रवेशे दशभिः प्रोक्तो निर्गमे द्वादशांगुलः।।८२।।

श्री शिव जी ने कहा–

हे देवी! देहरूपी एक नगर है। उसकी रक्षा करने वाला प्राणवायु है। भीतर प्रवेश करते समय श्वास दस अंगुल प्रमाण अन्दर जाता है और बाहर निकलते समय प्रश्वास बारह अंगुल प्रमाण चलता है।

गमने तु चतुर्विंशा नेत्रवेदास्तु धावने।
मैथुने पंचषष्टिश्च शयने च शतांगुलः।।८३।।

मार्ग में चलते समय चौबीस अँगुल प्रमाण चलता है और दौड़ते समय बयालीस अँगुल प्रमाण चलता है, संभोग के समय पैंसठ अँगुल प्रमाण चलता है और सोते समय सौ अँगुल प्रमाण चलता है।।

प्राणस्य तु गतिर्देवी स्वभावाद्द्वादशांगुलः।
भोजने वचनेचैव गतिरष्टादशांगुलः।।८४।।

हे देवी! स्वभाव से प्राण की गति बारह मानी जाती है, परन्तु भोजन करते और वार्ता करते समय अठारह हो जाती है।

एकांगुलकृते न्यूने प्राणे निष्कामता मता।
आनंदस्तु द्वितीये स्यात् कविशक्तितृतीयके।।८५।।

हे देवी! यदि साधक योगाभ्यास के बल से प्राण की लंबाई को एक अँगुल घटाये तो निष्काम हो। दो अँगुल घटाये तो आनन्द की प्राप्ति हो, तीन अँगुल घटावे तो कविता करने में समर्थ हो।

वाचां सिद्धिश्चतुर्थे तु दूरदृष्टिस्तु पंचमे।
षष्ठेत्वाकाशगमनं चंडवेगश्च सप्तमे।।८६।।

चर अँगुल घटाये तो वाक्सिद्धि हो, पाँच अँगुल घटाये तो दूर दृष्टि को दे, छः अँगुल घटाये तो आकाश गामी हो और सात अँगुल घटाये तो प्रचण्ड वेगगामी वाला हो।

अष्टमे सिद्धयश्चाष्टौ नवमे निधयो नव।
दशमे दशमूर्तिश्च छायानाशो दशैकके।।८७।।

आठ अँगुल घटावे तो अष्टसिद्धि को प्राप्त करे, नव अँगुल घटावे तो नवनिधि को प्राप्त करे। दस अँगुल घटाये, तो दशमूर्ति शिवरूप हो जावे और ग्यारह अँगुल घटावे तो छाया रहित देवता रूप हो जाए।

द्वादशे हंसचारश्च गंगामृतरसं पिवेत्।
आनखाग्रे प्राणपूर्णे कस्य भक्ष्यं च भोजनम्।।८८।।

इसी प्रकार साधक यदि साधना द्वारा बारह अँगुल अपनी प्राणवायु की लंबाई को घटाये तो हंस की चाल चले तथ साक्षात् परमेश्वर स्वरूप होकर नित्य गंगा अमृत रूपी रस का पान करे। हे देवी जब पाँव से लेकर शिखा पर्यन्त प्राण पूरित हो जाये, तो फिर किसका भक्ष्य और किसका भोजन पूर्ण ब्रह्म होकर अमर हो जाए अर्थात् भूख-प्यास तथा वासनाओं से मुक्ति प्राप्त कर ले।

एवं प्राणविधिः प्रोक्ताः सर्वकार्य फलप्रदा।
ज्ञायते गुरुवाक्येन न विद्याशास्त्रकोटिभिः।।८९।।

हे देवी! इस प्रकार प्राण की विधि कही है। यह सभी कार्यों को सिद्ध करने वाली है। परन्तु गुरु के मुख से जानी जाती है, अन्यथा करोड़ों शास्त्र पढ़ने से भी इसका ज्ञान नहीं होता।

प्रातश्चन्द्रो रविसायं यदि दैवान्न लभ्यते।
मध्याह्नमध्यारात्राद्वा परतस्तौ प्रवर्तते।।९०।।

प्रातःकाल चन्द्र-स्वर और सांयकाल सूर्य-नाड़ी जब दैवयोग से प्रवाहित न हो, तब मध्याह्न में और अर्धरात्री में प्रवाहित होते हैं।

इसी के साथ तत्त्व-निर्णय नाम का प्रकरण समाप्त हुआ।

....

तृतीय अध्याय

युद्ध–प्रकरण

दूरयुद्धेजयीश्चन्द्रः समासन्नेदिवाकरः।
वहन्नाड्यागतः पादे सर्वसिद्धिः प्रजायते।।१।।

यदि किसी को दूर देश में युद्ध करना हो, तो उसके लिए चन्द्र–स्वर शुभ है। इससे उसे विजय प्राप्त होगी। यदि युद्ध किसी निकट स्थान में हो, तो पिंगला–नाड़ी के प्रवाह–काल में प्रस्थान करे। जिस भाग का स्वर सक्रिय हो, उसी भाग की ओर का पाँव आगे चलाए, तो हर कार्य में सिद्धि प्राप्त हो।

यात्रारंभे विवाहे च प्रवेशे नगरादिके।
शुभकार्येषु सर्वेषु चन्द्रचारः प्रशस्यते।।२।।

सभी प्रकार के शुभकार्यों में, यात्रा के आरम्भ में, विवाह में, गृहप्रवेश में और नगरप्रवेश में इन सभी प्रकार के कार्यों में यदि चन्द्र–स्वर सक्रिय हो तो शुभ है।

अयनतिथिदिनेशः स्वीयतत्त्वेन युक्तो
यदिवहति कदाचिद्दैवयोगेन पुंसाम्।
स जयति रिपुसैन्यं स्तंभमात्रस्वरेण
प्रभवति न च विघ्नं केशवस्यापि लोके।।३।।

दक्षिणायन और उत्तरायण, तिथि एवं वार, अर्थात् चन्द्र और सूर्य कदाचित् दैवयोग से अपने–अपने तत्त्व से युक्त हों, अपने तत्त्व में वहते हों तो पुरुष को जीत

प्राप्त हो, वह पुरुष सक्रिय-स्वर को बन्द करने से सभी शत्रु सेना को जीतेगा, यदि उसके आगे नारायण भी आ जाए, तो भी उसके कार्य में कोई विघ्न न डाल सके।

जीवरक्षज्जीवरक्षां जीवांगे परिधाय च।
जीवो जयति यो युद्धे जीवाज्जयति मेदिनीम्।।४।।

स्वर का अभ्यास करने वाला योगी जीव की रक्षा करता है। जीव अपने सक्रिय अंग का स्वर बन्द करके युद्ध करे, तो युद्ध में स्वरबल से सारी पृथ्वी को जीतेगा। इसमें सन्देह नही।

भूमौ जले च कर्तव्यं गमनं शान्ति कर्मसु।
वह्नौ वायौ प्रदीप्तेषु खे पुनर्नोभयेष्वपि।।५।।

भूमि-तत्त्व अथवा जल-तत्त्व प्रवाहित हो, तो यात्रा और शान्तिकर्म के लिए अनुकूल होता है। अग्नि-तत्त्व तथा वायु-तत्त्व के प्रवाह में क्रूर कर्म करने का योग होता है। आकाश-तत्त्व के प्रवाह में शान्तिकर्म और क्रूरकर्म दोनों ही नहीं करने चाहिए।

जीवेन शास्त्रं वध्नीया जीवेनैव विकासयेत्।
जीवेन प्रक्षिपच्छस्त्रं युद्धे जयति सर्वथा।।६।।

प्रवाहित स्वर को ध्यान में रखकर शत्रुओं पर आक्रमण करे, प्रवाहित स्वर को ध्यान में रखकर ही शस्त्र को निकाले और प्रवाहित स्वर को ध्यान में रखकर ही शस्त्र को चलाए, तब युद्ध में सब प्रकार से जीतेगा।

आकृष्य प्राणपवनं समारोहे च वाहनम्।
समुत्तरे पदं दद्यात्सर्वकार्याणि साधयेत्।।७।।

प्राणरूपी जो पवन है उसको खींच कर और वश में कर रथ पर चढ़े और चन्द्र-नाड़ी के भाग वाले पाँव को पहले चलाए, तो सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

अपूर्णे शत्रुसामग्रीं पूर्णे च स्वबलं तथा।
कुरुते पूर्णतत्त्वस्थो जयत्येको वसुंधराम्।।८।।

जिस ओर स्वर रिक्त हो उस ओर शत्रु की सामग्री करे, प्रवाहित स्वर की ओर में अपनी सेना में पृथ्वी-तत्त्व में स्थित होकर युद्ध करे, तो पृथ्वी को भी जीतेगा।

यत्नाड़ी वहते चांगं तत्स्यान्नैवाधिदेवता।
सन्मुखापि दिशा तेषां सर्वकार्य फलप्रदा।।९।।

जिस अंग की नाड़ी का स्वर प्रवाहित हो, उसी के अनुकूल देवता हो तथा दिशा भी अनुकूल हो, तो सभी कार्य शुभ फल दें।

आदौ तु क्रियते मुद्रा पश्चात्युद्धं समाचरेत्।
सर्पमुद्रा कृता येन तेषां सिद्धिर्नसंशयः।।१०।।

पहले मुद्रा का अभ्यास करे पश्चात् युद्ध करे। इस प्रकार जिसने सर्प की भान्ति मुद्रा का अभ्यास किया और युद्ध को गया, उसको सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें संशय नहीं।

चन्द्र प्रवाहेप्यथ सूर्यवाहे भट्टाः
समायांति च योद्धुकामाः।
समीरणः तत्त्वविदा प्रपीत्वा
या शून्यता सा प्रतिकालदृष्टः।।११।।

जब चन्द्र-स्वर अथवा सूर्य-स्वर प्रवाहित हो और वायु-तत्त्व प्रधान हो, तब युद्ध की इच्छा वाला योद्धा युद्ध के लिए प्रस्थान करे और वायु के प्रवाह को जानकर

उसी को नियन्त्रित कर चले, तो जय हो। परन्तु यदि प्रतिकूल स्वर हो अर्थात् शून्य भाग में युद्ध को प्रस्थान करे, तो उसको कालरूपी मृत्यु ग्रास करेगा, ऐसा कहा गया है।

यां दिशां वहतेवायुः युद्धं तां दिशिदापयेत्।
जयत्येवं न संदेहः शक्रोऽपि यदि चाग्रतः।।१२।।

जिस दिशा की ओर वायु-तत्त्व प्रवाहित हो, उसी दिशा की ओर युद्ध में आगे बढ़े। इस प्रकार अवश्य जीतेगा, साक्षात् इन्द्र भी आगे आए उसको भी जीतेगा। इसमें संशय नहीं।

यत्र नाड्यां वहेद्वायुस्तदगं प्राणमेव च।
आकृष्य गच्छेत्कर्णांति जयत्येव पुरंदरम्।।१३।।

जिस ओर का स्वर सक्रिय हो, उसी ओर का प्राण कान पर्यन्त खींच करके युद्ध में जाये, तब इन्द्र को भी जीतेगा। इसमें कुछ संशय न करे।

प्रतिपक्षप्रहारेभ्यां पूर्णांगं योऽभिरक्षिते।
न तस्य रिपुभिः शक्तिर्वलिष्टैरपिहन्यते।।१४।।

युद्ध में शत्रु के प्रहार से सक्रिय स्वर की ओर स्थित अंगों की रक्षाकरे तथा शून्य स्वर की ओर स्थित अंग में प्रहार को ले, तो उसको मारने में समर्थ कदाचित् बलवान भी न हो।

अंगुष्ठतर्जनीवश्ये पादांगुष्ठस्तथाध्वनिः।
युद्धकाले च कर्त्तव्यं लक्षयोधजयीभवेत्।।१५।।

अंगुष्ठ तथा तर्जनी अंगुली से पाँव के अंगुष्ठ को ठोक कर अर्थात् ध्वनि करके मार्ग पर चले, फिर युद्ध को

जाये तब तो लाख योधाओं को भी जीतेगा। ऐसी मुद्रा युद्ध के समय में करने योग्य है।

निशाकरे रवौवारे मध्येयस्य समीरणः।
स्थितो रक्षेद्दिगंतानि जयकांक्षो नरः सदा।।१६।।

जब कभी चन्द्र-नाड़ी और सूर्य-नाड़ी के मध्य जिसका वायु वहता हो, वह जय को चाहने वाला सदा अपनी स्वरवाली दिशा की रक्षा करता हुआ स्थित हो।

श्वासप्रवेशकाले तु दूतो जल्पति वांछितम्।
तस्यार्थसिद्धिमायाति निर्गमेनैव सुंदरी।।१७।।

जिस ओर से श्वास लिया जा रहा हो, प्रश्न पूछने वाला उस भाग में बैठकर प्रश्न पूछे तो वांछित कार्य की सिद्धि तुरन्त हो और यदि प्रश्न पूछने वाला श्वास छोड़ने की ओर बैठकर प्रश्न पूछे, तो हे सुन्दरी निश्चित रूप से हानि जान।

लाभादिन्यपि कार्याणि पृष्टानि कीर्तितानि च।
जीवं विंशति सिद्धयन्ति हानिर्निःसरणे भवेत्।।१८।।

लाभ प्राप्ति आदि के जितने कार्य हैं, वे श्वास के प्रवेश के समय में पूछे गये हों, तो सिद्ध होते हैं। तथा श्वास के छोड़ते समय यदि पूछे गये हों, तो सिद्ध नहीं होते।

नाड़ीदक्षा स्वकीया च स्त्रीयां वामा प्रशस्यते।
कुम्भकं युद्धकाले च त्रयो नाड़ी त्रयो गतिः।।१९।।

युद्ध के समय अपनी स्त्री का बायाँ स्वर हो और अपना दायाँ स्वर हो तो भी शुभ जानना चाहिए। युद्ध के समय में कुम्भक करे तो शुभ होता है, इस प्रकार तीन

प्रकार की नाड़ी और तीन प्रकार की गति जाननी चाहिए।।

हकारस्य सकारस्य विनाभेदः स्वरः कथम्।
सोऽहं हंस पदेनैव जीवोजयति सर्वदा।।२०।।

हकार और सकार के भेद विना अर्थात् इनके ज्ञान के विना स्वर–ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। **सोऽहं** जो हंस पद के लगातार जप द्वारा सदैव जीव जय को प्राप्त करता है।

शून्यांगं पुरतः कृत्वा जीवांगोपयेत्तु यः।
जीवांगंघातमाप्नोति शून्यांगं रक्षते सदा।।२१।।

हे देवी! शून्य अंग को आगे करके सक्रिय स्वर वाले भाग की जो रक्षा करे उसको घात न लगे। सक्रिय स्वर वाला भाग घात करवाता है, शुन्यस्वर वाला भाग सदा रक्षा करता हैं।

वामे वा यदि वा दक्षे यदि पृच्छति पृच्छकः।
पूर्णे घातो न जायेत शून्यघातं विनिर्दिशेत्।।२२।।

युद्ध सम्बन्धी प्रश्न पूछने वाला जब प्रश्न पूछे उस समय चन्द्र–स्वर अथवा सूर्य–स्वर प्रवाहित हो, तो युद्ध में सफलता प्राप्त हो और यदि शून्यस्वर हो, तो हानि का योग बनता है।

भूतत्त्वेनोदरे घातः पदस्थानेंदुना भवेत्।
उरुस्थानेऽग्नितत्त्वेन करस्थानेन वायुना।।२३।।

पूछने वाला शून्य स्वर की ओर बैठ कर प्रश्न करे और पृथ्वी–तत्त्व की प्रधानता हो, तो पेट में घात हो, जल–तत्त्व की प्रधानता हो, तो पाँव में घात करे, अग्नि–तत्त्व की प्रधानता हो, तो जंघा में घात हो और

वायु–तत्त्व चलता हो, तो हाथों में चोट लगने की आशंका रहती है।

शिरसि व्योमतत्त्वेन ज्ञातव्यो घातनिर्णयः।
एवं पंच विधो घातः स्वरशास्त्रे प्रकाशितः।।२४।।

आकाश–तत्त्व की प्रधानता में सिर को चोट लगे, ऐसे चोट का निर्णय जानने योग्य है। इस प्रकार स्वर–शास्त्र में इन पाँच प्रकार के घात का प्रकाश किया है।

युद्धद्वये कृते प्रश्ने पूर्णस्य प्रथमोजयः।
रिक्तचैव द्वितीयस्तु जयीभवति नान्यथा।।२५।।

यदि दोनों युद्ध करने वाले पुरुष प्रश्न करें तो पूर्णस्वर वाले भाग में बैठे हुए की पहले जय हो। शून्यस्वर की ओर बैठे हुए की दूसरी बार जय हो, अन्यथा अन्य प्रकार से जय न हो।

पूर्णनाड़ी गतः पृष्ठे शून्यमंगं तदग्रतः।
शून्यस्थाने कृते शत्रुर्म्रियते नात्र संशयः।।२६।।

यदि युद्ध करने वाला युद्ध के लिए पूर्णस्वर के समय प्रस्थान करे, तो उसकी जय हो। युद्ध में पूर्णस्वर की नाड़ी वाला भाग पीछे रहे और शून्य अंग की नाड़ी वाला भाग शत्रु के आगे करे, इस प्रकार शत्रु को शून्य स्थान करे, तो शत्रु की मृत्यु होगी। ऐसा जानना चाहिए।

वामाचारे समं नाम यस्य तस्य जयो भवेत्।
पृच्छको दक्षिणे भागे विजयी विषमाक्षरः।।२७।।

बायाँ स्वर चलते प्रश्न पूछने वाला पूछे, जिसका नाम अक्षर सम हो, तब तो तुरन्त जय हो और दायाँ स्वर चलते प्रश्न पूछने वाले का नाम अक्षर विषम हो,

तब भी सफलता प्राप्त हो। इससे उलटा हो तब हानि जाननी चाहिए।

यदा पृच्छति चन्द्रस्थः तदा संधानमादिशेत्।
पृच्छेद्यदास्तु सूर्यस्थस्तदा जानीहि विग्रहम्।।२८।।

युद्ध होगा अथवा नहीं होगा इस प्रश्न को पूछने वाला चन्द्र-स्वर के प्रवाह के समय प्रश्न पूछे, तो सन्धि होने की संभावना रहती है। परन्तु यदि सूर्य-स्वर के प्रवाह के समय में प्रश्न पूछे तो युद्ध होगा। ऐसा जानना चाहिए।

पार्थिवी च समं युद्धं सिद्धिर्भवति वारुणे।
युद्धेहि तेजसिभंगो मृत्युर्वायौ नभस्यापि।।२९।।

यदि प्रश्न पूछते समय पृथ्वी-तत्त्व की प्रधानता हो, तो दोनों पक्षों में सम युद्ध हो; जल-तत्त्व की प्रधानता हो, सिद्धि की प्राप्ति हो; अग्नि-तत्त्व की प्रधानता हो, तो चोट लगे; वायु-तत्त्व और आकाश-तत्त्व प्रधान हों, तो मृत्यु हो।

निमित्तकप्रसादाद्वा यदा न जायतेऽनिलः।
पृछाकाले तदाकुर्याद्द्वंद्वयुद्धेन बुद्धिमान्।।३०।।

प्रश्न पूछने के समय वायु शुभदायक न चले अर्थात् योगी सक्रिय स्वर का निश्चय न कर पाये, तब विद्वान उत्तर को द्वंद्वयुद्ध से जोड़े।।

निश्चलां धारणां कृत्वा पुष्पंहस्तान्निपातयेत्।
पूर्णांगें पुष्पपतनं शून्ये वा तत्फलं वदेत्।।३१।।

मन को एकाग्र करके निश्चल धारणा रखके पुष्प को हाथ से ऊपर को फैंके, जिस ओर पुष्प गिरे वैसा

फल कहे। पूर्णांग की ओर गिरे तो शुभ फल दे और शून्यभाग की ओर गिरे तो शून्य फल कहे।

तिष्ठन्नुपविशेत्वापि प्राणमायेन्निजंमनः।
मनोभंगमकुर्वाणः सर्वकार्येषुजीवति।।३२।।

खड़े, उठते अथवा बैठते अपने मन को प्राण के वश रखे अर्थात् पूर्ण एकाग्रता के साथ श्वास ले, इस प्रकार मन को एकाग्र रखने से सभी कार्यों में सिद्धि प्राप्त करे।

जीवेनस्थापयेद्वायुं जीवेनारंभयेत्पुनः।
जीवेनक्रीडते नित्यं द्यूतं जयति सर्वथा।।३३।।

यदि कोई प्रवाहित स्वर से ही वायु स्थापना करे और प्रवाहित स्वर से ही कार्य का आरम्भ करे तथा प्रवाहित स्वर से ही जुआ खेलने बैठे, तो सदा जीत हो।

स्वरज्ञान बलादग्रे निस्फलं कोटिधाभवेत्।
इहलोके परत्रैव स्वरज्ञानी बलीसदा।।३४।।

स्वर-ज्ञान के बल के आगे अन्य करोड़ों उपाय निष्फल हैं अर्थात् जहाँ करोडों उपायों से कार्य सिद्ध नहीं होता है वहाँ वह कार्य स्वर-ज्ञान की युक्ति से सिद्ध हो जाता है। इस लोक एवं परलोक में भी स्वरा-ज्ञान वाला सदा बली है।

दशशतायुतं लक्षं देशाधिपबलंक्वचित्।
शतक्रतुस्वरेन्द्राणां बलंकोटि गुणंभवेत्।।३५।।

किसी देश का राजा लाखों सैना वाला भी हो, एवं इन्द्र देवों का राजा करोड़ गुणा सेना वाला भी हो, तो भी स्वर-ज्ञानी बली रहेगा।

श्रीदेव्युवाच-

परस्परं मनुष्याणां युद्धे शक्रे जयस्तथा।
यमयुद्धे समुत्पन्ने मनुष्याणां कथंजयः।।३६।।

पार्वती प्रश्न करती है–

हे शिव जी! आपने मनुष्यों के आपस में युद्धों के सम्बन्ध में वर्णन किया कि स्वर–ज्ञान के बल वाला इन्द्र को भी जीतेगा। परन्तु यदि यमराज के साथ युद्ध होगा, तो किस प्रकार जीत प्राप्त करेगा?

ईश्वर उवाच–

ध्यायेद्देवं स्थिरेजीवे जुहुजाज्जीवसंगमें।
इच्छासिद्धिर्भवित्तस्य महालाभो जयस्तथा।।३७।।

शिव जी ने कहा–

जो स्थिर मन करके श्री ईश्वर का ध्यान करे और प्राणायाम के बल से जीव को सुषुम्ना के द्वारा ब्रह्माण्ड को चढ़ावे उसकी इच्छा की सिद्धि होती है और उसको महालाभ एवं जय की प्राप्ति होती है।

निराकारात्समुत्पन्नं साकारं सकलं जगत्।
तत्साकारं निराकारै ज्ञाते भवति तन्मयम्।।३८।।

हे देवी! निराकार ब्रह्म से सारे प्रपंच वाला दृश्य जगत् उत्पन्न होता है। वही दृश्य रूप सारा जगत् निराकार ब्रह्म में लीन हो जाता है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। अतः यम कहाँ उस तक पहुँचेगा।

इति युद्ध प्रकरणम्।

इसी के साथ युद्ध प्रकरण समाप्त हुआ।

....

चतुर्थ अध्याय

वशीकरण–प्रकरण

श्री देवी उवाच–

नरयुद्धं यमयुद्धं त्वया प्रोक्तं महेश्वरः।
इदानीं देवदेवानां वशीकरणकं वद।।१।।

श्री देवी जी ने कहा–

हे देवाधिदेव! आपने मनुष्यों के युद्ध में जय–पराजय का वर्णन किया और यम के साथ युद्ध होने की संभावना एवं जय–पराजय को सुनाया। अब कृपा करके वशीकरण के सम्बन्ध में कहें।

ईश्वर उवाच–

चन्द्रं सूर्येण वा कृष्यस्थापयेज्जीव मण्डले।
आजन्मवशगा रामा कथितोऽयं तपोधनैः।।२।।

शिव ने कहा–

हे देवी! यदि कोई पुरुष किसी महिला के चन्द्र–स्वर को सूर्य–स्वर के द्वारा खींचकर प्राणायाम की सहायता से जीव मण्डल में स्थापित करे, तो जन्म से लेकर के रामा जो स्त्री है वह वश में होगी। तपस्वियों के द्वारा ऐसा कहा गया है।

जीवेन गृह्यते जीवो जीवो यस्य तु दीयते
जीवस्थाने गतो जीवो बाला जीवांतकारकः।।३।।

यदि पुरुष अपने सक्रिय स्वर के द्वारा स्त्री के सक्रिय स्वर को रोक कर पुनः उस स्वर को स्त्री के स्वर में स्थापित करे, तो वह स्त्री जीवन भर के लिए उसके वश में हो जाती है।

रात्र्यंतयांवेलायां प्रसुप्ते कामिनीजने।
ब्रह्मजीवं पिवेद्यस्तु बाला प्राणहरो नरः।।४।।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में जब स्त्री सो रही हो, उस समय पुरुष यदि उसके ब्रह्मजीव को श्वास द्वारा अपने अन्दर खींच ले, तो वह स्त्री उसके वश में हो जाती है।

अष्टाक्षरं जपित्वा तु तस्मिन् काले गते सति।
तत्क्षणं दीयते चन्द्रो मोहमायाति कामिनी।।५।।

यदि कोई पुरुष अष्टाक्षर मन्त्र के जप के पश्चात् अपने चन्द्र–स्वर को कामातुर स्त्री के भीतर स्थापित करे, तो वह स्त्री उसके वश में हो जाती है।

शयने वा प्रसंगे वा युवत्यालिंगनेऽपि च।
यः सूर्येण पिवेच्चन्द्रं स भवेन्मकरध्वजः।।६।।

यदि कोई पुरुष स्त्री के साथ सोने के समय अथवा भोग के समय या फिर स्त्री के साथ गले लगने के समय अपने सूर्य–स्वर के द्वारा स्त्री के चन्द्र–स्वर को पी ले, तो वह उसे अपने वश में कर सकता है।

शिवमालिंगते शक्त्या प्रसंगे दक्षिणेऽपि वा।
तत्क्षणाद्दापयेद्यस्तु मोहयेत्कामिनी शतम्।।७।।

सम्भोग के समय यदि स्त्री का चन्द्र–स्वर तथा पुरुष का सूर्य–स्वर सक्रिय हो और वे दोनों स्वर आपस में मिल जायें, तो वह पुरुष सैकड़ों महिलाओं को वश में कर सकता है।

सप्त नव त्रयः पंच वारात्संगस्तु सूर्यगे।
चन्द्रे द्वितूर्य षट् कृत्वा वश्या भवति कामिनी।।८।।

सूर्य–स्वर के प्रवाह–काल में किसी पुरुष का महिला के साथ सात, नौ, तीन अथवा पाँच बार संग होता है अथवा चन्द्र–स्वर के प्रवाह–काल में दो, चार अथवा छः बार संग हो, तो वह महिला सदा के लिए उस पुरुष के वश में हो जाती है।

सूर्यचन्द्रौ समाकृष्य सर्पाक्रांत्याधरोष्ट्योः।
महापद्मे मुखं स्पृष्टा वारंवारमिदं चरेत्।।९।।

जब पुरुष का सूर्य–स्वर और चन्द्र–स्वर सम हो, तो उस समय पुरुष को दोनों स्वर खींच करके अपना ध्यान स्त्री के सर्प की भान्ति महाकमल रूप अधरोष्ट पर केन्द्रित करना चाहिए और स्त्री के मुख का बार–बार स्पर्श करना चाहिए।

आघ्राणमिति चन्द्रस्य यावन्निद्रा वशंगता।
पश्चाज्जाग्रतवेलायां चोष्यती गलचक्षुषी।।१०।।

सूर्य–स्वर को बन्द कर स्त्री के चन्द्र–स्वर को सूंघना चाहिए, जब तक थोड़ी निद्रा पड़े तब तक ऐसा करता हुआ, जब जागकर उठे उस समय नायिका के गले और नेत्रों को चूमे तो उसीक्षण वश में हो जाए। योगी जन यदि गले और नेत्रों पर हाथ फेरें और हाथ को मुख से चूमे तो माया को वश में करें।

अनेन विधिना कामी वशयेत्सर्वकामिनी।
इदं न वाच्यमन्यस्मिन्नित्याज्ञा परमेश्वरी।।११।।

हे पार्वती! इस प्रकार इस विधि के द्वारा कामी पुरुष कामिनियों को वश में कर सकता है। महिलाओं को वश में करने की इससे श्रेष्ठ अन्य कोई विधि नहीं

है। इस विधि को किसी को नहीं कहना चाहिए। यह मेरी आज्ञा है।

इति वशीकरण प्रकरणम्।

इसी के साथ वशीकरण प्रकरण समाप्त हुआ।

....

पंचम अध्याय

गर्भ–प्रकरण

सुषुम्ना सूर्यसंधेन ऋतुदानं तु योजयेत्।
अंगहीनः पुमास्तस्य जायते कृष्णविग्रहः।।१।।

जो पुरुष अपने सूर्य–स्वर को पत्नी के सुषुम्ना–नाड़ी के प्रवाह–काल में स्थापित करते हुए सम्भोग करे और ऋतुदान को जोड़े, उसको अंगहीन पुत्र पैदा होगा और कृष्ण शरीर वाला होगा।

विषमांके दिवारात्रो विषमांके दिवाधिपः
चन्द्रनेत्राग्नितत्त्वेषु वंध्यापुत्रमवाप्नुयात्।
ऋत्वारंभे रविः पुंसां स्त्रीयां चैव सुधाकरः
अनयोः संगमे प्राप्ते वंध्यापुत्रमवाप्नुयात्।।२।।

विषम काल वाला दिन एवं रात हो, विषम काल वाला वार हो। स्त्री की चन्द्र–नाड़ी और पुरुष की सूर्य–नाड़ी वहती हो और अग्नि–तत्त्व में भोग करे, तो स्त्री वंध्या भी हो, तो भी पुत्र को जन्म दे। ऋतुकाल के समय पुरुष का सूर्य–प्रवाह हो और स्त्री का चन्द्र–प्रवाह हो, इस प्रकार उस समय सम्भोग करने से वंध्या भी पुत्र को उत्पन्न करे।

ऋत्वारंभे रविः पुसां ऋत्वन्ते तु सुधाकरः।
अनेनक्रमनानेन नादत्ते दैव दंडकः।।३।।

ऋतुकाल के आरम्भ में पुरुषों का सूर्य–स्वर प्रवाहित हो और ऋतुकाल के अन्त में चन्द्र–स्वर प्रवाहित

हो, तो भोग के द्वारा चिरकाल तक जीवित रहने वाला पुत्र उत्पन्न हो।

चन्द्रनाड़ी वहेत् प्रश्ने गर्भे कन्या तदा भवेत्।
सूर्ये भवेत्तदा पुत्रो द्वयोगर्भौ विहन्यते।।४।।

जब कोई पुत्र अथवा कन्या का प्रश्न पूछे उस समय अपना चन्द्र-स्वर प्रवाहित हो, तब कन्या उत्पन्न हो यदि सूर्य-स्वर प्रवाहित हो, तो पुत्र उत्पन्न होगा और यदि दोनों एक साथ प्रवाहित हों, तो तब गर्भ नष्ट होगा।

चन्द्रे स्त्री पुरुषः सूर्ये मध्यभागे नपुंसकः।
गर्भप्रश्ने यदा दूतः पूर्णपुत्रः प्रजायते।।५।।

प्रश्न पूछने वाले का चन्द्र-स्वर जिस ओर वहता हो, उस ओर बैठकर दूत प्रश्न पूछे तो कन्या जान, सूर्य-स्वर जिस ओर वहता हो, उस ओर बैठकर प्रश्न पूछे तो पुत्र उत्पन्न हो, स्वर यदि मध्य भाग में हो और सुषुम्ना सक्रिय हो तो नपुंसक संतान उत्पन्न हो। प्रश्न पूछनें वाले का स्वर और कहने वाले का स्वर भी पूर्ण हो, तो पूर्ण गुणों वाला पुत्र उत्पन्न हो।

पृथिवीवै जनयेत्पुत्रः कन्यका तु प्रभंजने।
तेज गर्वपातः स्यान्नभसापि नपुंसकः।।६।।

यदि पृथिवी-तत्त्व प्रधान हो, तो पुत्र उत्पन्न हो; वायु-तत्त्व प्रधान हो, तो कन्या उत्पन्न हो; तेज-तत्त्व प्रधान हो गर्भ नष्ट हो और आकाश-तत्त्व की प्रधानता में नपुंसक संतान उत्पन्न हो।

शून्ये शून्यं युगे युग्मं गर्भपातश्च संक्रमे।
सूर्यभागेकृतेपुत्रः चन्द्रवारेतु कन्यका।।७।।

हे देवी! यदि शून्य-स्वर के प्रवाह-काल में गर्भ स्थित हो, तो शून्य जान अर्थात् तब कोई संतान नहीं होगी, युग्म-तत्त्व चलते गर्भ स्थित हो, तब तो युगल उत्पन्न होगा तथा तत्त्व के मिलने के समय का गर्भ नष्ट हो। सूर्य-स्वर के प्रवाह काल में गर्भ स्थित हो, तो पुत्र पैदा हो और चन्द्र-स्वर के प्रवाह काल में कन्या उत्पन्न हो

विषमे गर्भपातः स्यात्भावे चाथ नपुंसकः।
तत्त्ववित्सुविजानीयात्कथितं तत्र सुन्दरी।।८।।

विषम स्वर के प्रवाह-काल यदि प्रश्नकर्ता प्रश्न करे, तो गर्भपात हो; सुषुम्ना की सक्रियता में प्रश्न किया गया हो तो नपुंसक हो। परन्तु हे पार्वती तत्त्व के जानने वाले पुरुष ही इसको जान सकते हैं, अज्ञानी इसे क्या समझेगा।

गर्भाधानं मारुतं स्यात्चदुःखी
दशाख्यातो वारुणी सौख्ययुक्तः।
गर्भस्रावी स्वल्पजीवी च वह्नौ
भौगी भव्या पार्थिवी चार्थयुक्तः।।९।।

यदि वायु-तत्त्व की प्रधानता में गर्भधान हो, तो पैदा होने वाला बच्चा दुःखी हो और क्रूर दशा के फल को भोगेगा; जल-तत्त्व की प्रधानता में गर्भधान हो, तो सुखी होगा; आकाश-तत्त्व की प्रधानता में गर्भ नहीं ठहरेगा; अग्नि-तत्त्व में गर्भ नष्ट होगा अथवा स्वल्प आयु वाला होगा, और पृथ्वी-तत्त्व के चलते भोगी, कल्याणवाला और धनवान् हो।

धनवान्सौख्ययुक्तश्च भोगवान्गर्भसंस्थितः।
स्यान्नित्यं वारुणे तत्त्वे व्योम्निगर्भो विनश्यति।।१०।।

जल-तत्त्व की प्रधानता के चलते गर्भ का जीव धनवान् और सुखी हो, जल-तत्त्व के चलते गर्भ का जीव भोगी हो। आकाश-तत्त्व के चलते गर्भ का जीव नष्ट हो जाता है।

माहेन्द्रे स्वसुतोत्पत्ति वारुणे दुहिताभवेत्।
शेषेषु गर्भहानिः स्याज्जायमानस्य वा मृतिः।।११।।

पृथ्वी-तत्त्व की सक्रियता के समय स्थापित गर्भ से सुन्दर पुत्र की उत्पत्ति हो, जल-तत्त्व की प्रधानता में कन्या का जन्म हो, अन्य तत्त्वों में गर्भ नष्ट हो अथवा पैदा होते ही मृत्यु हो।

रविमध्ये गतश्चन्द्रः जलमध्ये गतोरविः।
ज्ञातव्यं गुरुतः शीघ्रं न वेद्यं शास्त्रकोटिभिः।।१२।।

सूर्य-नाड़ी के मध्य चन्द्रमा और चन्द्र-नाड़ी के मध्य सूर्य हो, तो गुरु के मुख से शीघ्र ज्ञान प्राप्त करना चाहिए अन्यथा करोड़ों शास्त्रों द्वारा भी ज्ञान प्राप्त न कर सके।

इति गर्भ प्रकरणम्।

इसी के साथ गर्भ प्रकरण समाप्त हुआ।

....

षष्ठ अध्याय

संवत्सर–प्रकरण

अथ संवत्सर लक्षणम्–

चैत्रशुक्लप्रतिपदि प्रातस्तत्त्वविभेदितः।
पश्येद्विचक्षणो योगी दक्षिणे चोत्तरायणे।।१।।

संवत्सर का लक्षण–

विद्वान पुरुष चैत्र–मास के शुक्ल–पक्ष की प्रतिपदा वाले दिन प्रातः काल उठ कर तत्त्व–भेद को देखे अर्थात् आगामी वर्ष के फल को देखे। इसके साथ ही बुद्धिमान् योगी दक्षिणायण एवं उत्तरायण के समय भी तत्त्व के भेद का निर्णय करे।

चन्द्रोदयस्य वेलायां वहमानो तत्त्वतः।
पृथिव्यापस्तथावायुः सुभिक्षं सर्व सस्यजम्।।२।।

यदि चैत्र–मास के शुक्ल–पक्ष की प्रतिपदा वाले दिन स्वरज्ञानी का चन्द्र–स्वर प्रवाहित हो तथा उस समय पृथ्वी–तत्त्व, जल–तत्त्व अथवा वायु–तत्त्व सक्रिय हो, तो आगामी वर्ष में भरपूर अन्नाज उत्पन्न हो, भरपूर वर्षा के कारण सभी ओर हरियाली हो एवं सभी प्रकार के अन्न सस्ते हों।

तेजोव्योम्नि भयं घोरं दुर्भिक्षं कालतत्त्वतः।
एवं वर्षफलं ज्ञेयं वर्षेमासे दिने तथा।।३।।

यदि प्रतिपदा के दिन अग्नि-तत्त्व अथवा आकाश-तत्त्व सक्रिय हो, तो आगामी वर्ष में बड़े चोर, भय, उपद्रव और बड़ा अकाल होगा। इस प्रकार तत्त्व के प्रमाण करके सारे वर्ष का फल चैत्र शुक्ल-पक्ष को देखे और मास का फल संक्रांति को देखे एवं दिन का फल प्रातः काल उठकर देखे।

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टासर्वत्र कर्मसु।
देशभंगं महारोगं क्लेशकष्टादि दुःखदा।।४।।

यदि वर्ष के प्रथम दिन सुषुम्नानाड़ी सक्रिय हो, तो उस वर्ष में क्रूरता एवं सभी कर्मों का दुष्ट फल हो, देश का विभाजन हो, भारी रोगों को उत्पन्न करे, क्लेश एवं दुःखों को दे।

मेषसंक्रांति वेलायां स्वरभेदं विचारयेत्।
संवत्सरे फलं ब्रूयात् लोकानां तत्त्वचिंतकः।।५।।

स्वर का चिन्तन करने वाले ज्ञानी को वैशाखी के दिन संक्रांत प्रवेश होने के समय स्वर-भेद का विचार करना चाहिए। उस दिन सक्रिय स्वर के अनुसार सारे वर्ष के फल पर विचार करना चाहिए।

पृथिव्यादि तत्त्वेन दिनमासावृतं फलं।
शोभनं च तथा दुष्टं व्योममारुतवह्निभिः।।६।।

पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्वों के द्वारा दिन, महीने एवं वर्ष का फल पृथ्वी-तत्त्व और जल-तत्त्व की सक्रियता में शुभ हो और आकाश-तत्त्व, वायु-तत्त्व तथा अग्नि-तत्त्व में दुष्ट फल हो।

सुभिक्षं राष्ट्रवृद्धिः स्याद्बहुसस्या वसुंधरा।
बहुवृष्टिस्तथा सौख्यं पृथ्वीतत्त्वं वहेद्यदि।।७।।

मेष-संक्रांति के समय यदि पृथ्वी-तत्त्व सक्रिय हो, तो पूरे वर्ष अच्छा समय रहे और राज्य में वृद्धि हो, पृथ्वी अनेक अन्नों से परिपूर्ण हो और वर्षा अधिक हो, सब ओर सुख हो।

अतिवृष्टिः सुभिक्षं स्यादारोग्यं सौख्यमेव च।
बहुसस्या तथा पृथ्वी आपस्तत्त्वं वहेद्यदि।। ८।।

मेष-संक्रांति के समय यदि जल-तत्त्व सक्रिय हो, तो आगामी वर्ष में अति वृष्टि होगी और अच्छा समय होगा, लोक निरोग रहेंगे, पृथ्वी अन्नों से परिपूर्ण होगी, सभी ओर सुख एवं शान्ति होगी।

दुर्भिक्षं राष्ट्रभंगस्याद्रोगोत्पत्ति सुधारुणा।
अल्पादल्पतरावृष्टिरग्नितत्त्वं भवेद्यदि।।९।।

इसी प्रकार वैशाखी के दिन यदि अग्नि-तत्त्व की सक्रियता हो, तो देश में अकाल पड़े, राज्य भंग हो, भयानक रोग उत्पन्न हों, थोड़ी वर्षा भी न हो और अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हों।

उत्पातोपद्रवा भीतिरल्पावृष्टि सुरात्रयः।
मेषसंक्रांति वेलायां वायुतत्त्वं वहेद्यदि।।१०।।

मेष-संक्रांति के समय वायु-तत्त्व की यदि प्रधानता हो, तो उपद्रव हों, उत्पात हो, बड़ा भय हो, वर्षा अल्प हो तथा रात्रियाँ शीतल हों।

मेषसंक्रांति वेलायां व्योमतत्त्वं वहेद्यदि।
तत्रापि शून्यता ज्ञेया सस्यादीनां सुखस्य च।।११।।

मेष-संक्रांति के समय अकाश-तत्त्व यदि सक्रिय हो, तो भी सभी अन्नों और सुखों की शून्यता जाननी चाहिए।

पूर्णे प्रवेशने श्वासे स्वस्व तत्त्वेन सिद्धिदः।
सूर्यचन्द्रेऽन्यथा भूते संग्रहः सर्वसिद्धिदः।।१२।।

यदि श्वास पूर्णता से प्रवाहित हो, तो अपने-अपने तत्त्व में सिद्धि देता है। यदि कदाचित् सूर्य-स्वर तथा चन्द्र-स्वर क्रम से अन्यथा प्रवाहित हों, तो अन्नादि का संग्रह हो और सभी ओर सिद्धि होती है।

विषमे वह्नितत्त्वस्य ज्ञायते केवलं नभः।
तत्कुर्याद्वस्तु संग्राह्यं द्विमासे च महर्घता।।१३।।

यदि मेष-संक्रांति के समय विषम स्वर में अग्नि-तत्त्व अथवा आकाश-तत्त्व प्रवाहित हो, तब अधिक अन्न का भण्डार करना चाहिए। क्योंकि दो महीने के बाद अन्न के मूल्य में वृद्धि हो सकती है।

रवौसंक्रमनी नाड़ी गलान्ते च प्रसर्पति।
खानिलवह्नि योगेऽपि रौरवं जगती तले।।१४।।

सूर्य-संक्रांति के समय नाड़ी गले के अन्त तक चली जाती है। उस समय आकाश-तत्त्व, वायु-तत्त्व अथवा अग्नि-तत्त्व प्रवाहित हो, तो संसार में बड़ा भय रहता है।

इति संवत्सर प्रकरणम्।

इसी के साथ संवत्सर प्रकरण समाप्त हुआ।

....

सप्तम अध्याय

रोग-प्रकरण

मही तत्त्वे स्व रोगं च जले च जलमातरः।
तेजसी खेट वायौ च शाकिनी पितृदोषके।।१।।

रोगी का प्रश्न पूछने पर यदि पृथ्वी-तत्त्व सक्रिय हो, तो अपने शरीर का रोग होगा अर्थात् रोग का कारण प्रारब्ध होगा; यदि जल-तत्त्व सक्रिय हो, तो रोग का कारण जलमातृका दोष होगा; यदि तेज-तत्त्व सक्रिय हो, तो खेट ग्रहों को रोग का कारण समझें; आकाश-तत्त्व एवं वायु-तत्त्व की सक्रियता में रोग का कारण शाकिनी-दोष अथवा पितृ-दोष होगा। इस प्रकार रोग के करणों के अनुसार ही रोगी उपाय करे।

आदौ शून्यगते दूते पश्चात्पूर्णो विशेद्यदि।
मूर्छितोऽपि ध्रुवं जीवे यदर्थं परिपृछति।।२।।

यदि व्याधि सम्बन्धी प्रश्न पूछने वाला पहले शून्य भाग में बैठे अर्थात् दूत के आते समय उस भाग का शून्य स्वर हो और उसके बाद उसी भाग में पूर्णनाड़ी चले, तो जिसके सम्बन्ध में प्रश्न पूछा हो वह व्यक्ति रोग से ग्रस्त होगा। परन्तु रोगी होने पर भी अवश्य जीवित रहेगा।

यस्मिन्नंगे स्थितोजीवस्तत्रस्थः परिपृच्छति।
तदा जीवति जीवोऽसौ यदि रोगैरुपद्रुतः।।३।।

यदि प्रश्नकर्ता प्रवाहित स्वर की ओर बैठकर रोग का प्रश्न पूछे अर्थात् प्रश्नकर्ता के प्रश्न करते समय उस

ओर का स्वर सक्रिय हो जिस ओर वह बैठा हो, तब वह रोगी अवश्य ही रोगमुक्त होगा, चाहे वह भयानक रोग से भी पीड़ित होगा।

दक्षिणेन यदा वायुः दुःखं रौद्राक्षरैर्वदित्।
तदा जीवति जीवोऽसौ चन्द्रे समफलं समम्।।४।।

यदि सूर्य-स्वर सक्रिय हो और प्रश्नकर्ता अपनी बात दुःख एवं भय के साथ कहे, तो इसका अर्थ है कि वह रोगी रोगमुक्त होगा। परन्तु यदि उस समय चन्द्र-स्वर सक्रिय हो, तो रोगी चिरकाल तक दुःख भोगकर बचेगा।

जीवाकारं च वा धृत्वा जीवाकारं विलोक्य च।
जीवस्थो जीवितं प्रश्ने तस्य स्याज्जीवितं फलम्।।५।।

स्वर का आकार धारण करके, स्वर के आकार को देखकर, यदि पूछने वाले का भी स्वर अनुकूल दिशा में स्थित हो, तो उसको जीवित रहने का फल कहे।

वामाचारस्तदा दक्षः प्रवेशे यत्र वाहने।
तत्रस्थः पृच्छते दूतस्तस्य सिद्धिर्नसंशयः।।६।।

जब बायाँ-स्वर सक्रिय हो और प्रश्नकर्ता यदि दाहिनी ओर बैठकर प्रश्न पूछे तथा बाद में यदि दायाँ-स्वर सक्रिय हो जाये, तो उस स्थिति में उसी समय उस पुरुष की सिद्धि हो।

प्रश्नेचाधः स्थितो जीवो नूनं जीवो हि जीवति।
ऊर्ध्वचारस्थितो जीवो जीवोयाति यमालयम्।।७।।

प्रश्न के समय में स्वर नीचे की ओर प्रवाहित हो, निंश्चित रूप से जिसका प्रश्न है, वह जीवित रहेगा और प्रश्न के समय में स्वर ऊपर की ओर प्रवाहित हो, तो जिस रोगी का प्रश्न हो उसका यमलोक में वास हो।

विपरीताक्षरं प्रश्ने रिक्तायां पृच्छको यदि।
विपर्ययं च विज्ञेयं विषमस्योदये सति।।८।।

प्रश्न पूछने के समय प्रश्नकर्ता रिक्त स्वर की ओर हो और ऐसे उलटे–सीधे अक्षरों से पूछे जो समझ में न आ सकें तथा उस समय सुषुम्ना प्रवाहित होने लगे, तो प्रश्न का फल अशुभ होगा।

चन्द्रस्थाने स्थितो जीवः सूर्य स्थाने तु पुच्छकः।
तदा प्राणविमुक्तोऽसौ यदि वैद्यशतैर्वृतः।।९।।

स्वरज्ञानी का चन्द्र–स्वर प्रवाहित हो और प्रश्नकर्ता का सूर्य–स्वर प्रवाहित हो, तो रोगी प्राणों को त्यागेगा। सैंकड़ों वैद्य चिकित्सा करे, तो भी रोगी की मृत्यु होगी।

पिंगलायां स्थितो जीवो वामे दूतस्तु पृच्छति।
तदापि म्रियते रोगी यदि त्राता महेश्वरः।।१०।।

यदि सूर्य–नाड़ी सक्रिय हो और प्रश्नकर्ता वाम–भाग की ओर स्थित होकर प्रश्न पूछे, तो रोगी की मृत्यु हो, साक्षात् शिव भी उपचार करे, तो भी रोगी नहीं बचेगा।

एकस्य भूतस्य विपर्ययेण
रोगाभिभूतिर्भवतीह पुंसाम्।
तयोर्द्वयोर्बन्धु सुहृद्विपत्तिः
पक्षद्वये व्यत्ययता मृतिः स्यात्।।११।।

इस संसार में प्रश्न देखने वाले और रोगी पुरुष अथवा प्रश्न कर्ता के पाँच तत्त्वों में से एक तत्त्व के भी विपरीत चलने से अथवा बन्द होने से रोंगों की प्राप्ति होती है। जैसे चलता हो पृथ्वी–तत्त्व परन्तु उसके स्थान पर जल–तत्त्व चल पड़ा, तब दोनों के बन्धु अर्थात् प्रश्न देखने वाले अथवा प्रश्नकर्ता के बन्धु, सज्जन अथवा मित्र दूर हो और एक महीने के बाद मृत्यु हो।

इति रोग प्रकरणम्।

इसी के साथ रोग प्रकरण समाप्त हुआ।

....

अष्टम अध्याय

काल–प्रकरण

अथ कालज्ञानम्–

मासादौ संवत्सरादौ च पक्षादौ च यथाक्रमम्।
क्षयकालं परीक्षेत् वायुरति वशः सुधीः।।१।।

काल का ज्ञान–

अब कालज्ञान को कहता हूँ– हे पार्वती! तू श्रवण कर। संवत्सर के आदि में, महीने के आदि में और पक्ष के आदि में क्रमपूर्वक तत्त्व की जाँच करनी चाहिए। इस प्रकार प्राण के अधीन रहते हुए हीन होती हुई आयु की परीक्षा करनी चाहिए।

पंचभूतात्मकं दीपं शशिस्नेहेन सिंचितम्।
रक्षेत्सर्ववातेन तेनजीवस्थितो भवेत्।।२।।

यह देह पाँच तत्त्वों के बने हुए दीपक के समान जानने योग्य है, चन्द्र–स्वर और सूर्य–स्वर रूपी जिसमें तेल है, प्राण रूपी ज्योति उस दीपक की सभी वायुओं से रक्षा करता है। इस प्रकार दृष्टांत करके जीव स्थित होता है।

मरुतं बंधयित्वा तु सूर्य बोधयते यदि।
अभ्यासाज्जीवते सूर्यः सूर्यकालेऽपि बंच्यते।।३।।

इति रोग प्रकरणम्।

इसी के साथ रोग प्रकरण समाप्त हुआ।

....

दो रात और दिन लगातार जिस पुरुष की पिंगलानाड़ी प्रवाहित रहे, तो यह समझें कि उस जीव की केवल दो वर्ष आयु शेष है। तत्त्व जानने वाले ने ऐसा कहा है।

त्रिरात्रं वहते यस्य वायुरेकपुटेस्थितः।
तदा संवत्सरादस्य प्रवदन्ति मनीषिणः।।८।।

तीन रात और दिन जिस जीव का वायु एक ओर प्रवाहित हो, तो वह जीव केवल एक वर्ष तक ही जीवित रहेगा। ऐसा बुद्धिमान् तत्त्व जानने वाले कहते हैं।

रात्रौ चन्द्रो दिवासूर्यो वहेद्यस्य निरंतरम्।
जानीयात्तस्य वै मृत्युः षण्मासाभ्यंतरे भवेत्।।९।।

जिसकी लगातार रात में चन्द्र–नाड़ी प्रवाहित हो और दिन को सूर्य–नाड़ी प्रवाहित हो, ऐसा निरंतर चलता रहे, तो उस जीव की छः महीने आयु जानें।

एकादिषोडशाहानि यदि भानु निरंतरम्।
वहेद्यस्य च वै मृत्युः शेषाहेन च मासिकैः।। १०।।

एक दिन से लेकर सोलह दिन पर्यन्त जिस जीव की सूर्य–नाड़ी लगातार प्रवाहित हो, तो उसकी पक्ष में मृत्यु हो, कुछ दिन सोलह से कम हों, तो उतने महीने पीछे मरेगा।

सम्पूर्ण वहते सूर्यश्चन्द्रमा नैव दृश्यते।
पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम्।।११।।

जिस जीव की लगातार पूर्णरूप से सूर्य–नाड़ी प्रवाहित हो और चन्द्र–नाड़ी दिखाई न दे, तो उसकी एक पक्ष में मृत्यु हो। काल को जानने वाले ने ऐसा कहा है।

सम्पूर्ण वहते चन्द्रः सूर्यो नैव च दृश्यते।
मासेन जायते मृत्युः कालाज्ञानेन भाषितम्।।९२।।

जिसकी लगातार पूर्ण रूप से चन्द्र-नाड़ी प्रवाहित हो और सूर्य-नाड़ी दिखाई न दे, तो उसकी एक महीने में मृत्यु हो। काल को जानने वाले ने ऐसा कहा है।

मूत्रं पुरीषं वायुश्च समकालं पंवर्तते।
तदासौ चलितौ ज्ञेयौ दशाहे म्रियते ध्रुवम्।।९३।।

जिस जीव का शौच के समय मल-मूत्र और अपान-वायु एक साथ निकले, तब वह चलायमान होता हुआ दस दिन में अवश्य मरेगा।

अरुंधती ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च।
आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थ मातृ मण्डलम्।।९४।।

जो जीव अरुंधती, ध्रुवतारे, विष्णु के तीनों पादों तथा मातृ-मण्डल को आकाश में न देख सके तो समझें कि उसकी हीन आयु है।

नवभ्रुवो सप्तप्रोथं पंचतारा त्रिनासिका।
जिह्वा एकदिनं प्रोक्तं म्रियते मानवो ध्रुवम्।।९५।।

जिस मानव को अपना भ्रूमध्य दिखाई न दे, तो जानें नौ दिन में मृत्यु हो; मुख दिखाई न दे, तो सात दिन में मृत्यु हो; आँख की पुतली दिखाई न दे, तो पाँच दिन में मृत्यु हो; नाक दिखाई न दे, तो तीन दिन में मृत्यु हो; जिह्वा दिखाई न दे, तो एक दिन में ही अवश्य मृत्यु होगी।

कोणादक्षांगुलीभ्यां तु कीचित्पीड्यनिरीक्षेत्।
यदा न दृश्यते बिन्दुर्दशाहे न जयी मृतः।।९६।।

आँख के कोण को अंगुली द्वारा कुछ थोड़ा पीडित करे, जब अश्रु का बिन्दु नहीं निकले तब दायें हाथ की अंगुली को आगे से पीड़ित करे यदि रक्त का बिन्दु न निकले तो जाने दस बीस दिन में अवश्य मृत्यु हो।

इति काल प्रकरणम्।

इसी के साथ काल प्रकरण समाप्त हुआ।

....

नवम अध्याय

नाड़ी–प्रकरण

अथ नाडीज्ञानम्–

इडागंगेति विज्ञेया पिंगला यमुनानदी।
मध्ये सरस्वती विद्यात्प्रयागः संगमस्तथा।।१।।

नाड़ी–ज्ञान का वर्णन–

इड़ा–नाड़ी गंगा जानने योग्य है, पिंगला–नाड़ी यमुना नदी के रूप में जाननी चाहिए, इनके मध्य सुषुम्ना–नाड़ी को सरस्वती के रूप में जानना चाहिए। जहाँ इन तीनों नाड़ियों का मिलन होता है उस स्थान को त्रिवेणी (प्रयाग) समझना चाहिए।

आदौ साधनमाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
बद्धपद्मासनो योगी बंधयेदुड्डियानकम्।।२।।

प्राणायाम के अभ्यास का पहला साधन जो शीघ्रता से प्रतीति करवाता है– प्रारम्भ में योगी बद्धपद्मासन में बैठकर उड्डियान बंध लगाते हैं अर्थात् प्राण को बाँधते हैं।

पूरकः कुम्भकश्चैव रेचकश्च तृतीयकः।
ज्ञातव्यो योगीभिर्नित्यं देहसंसिद्धिहेतवे।।३।।

प्राणायाम के तीन अंग– पूरक (श्वास को अन्दर लेना), कुम्भक (श्वास को अन्दर रोकना) और तीसरा रेचक (अन्दर से श्वास को बाहर निकालना) योगियों के

लिए जानने योग्य है। इस प्रकार प्राणायाम के नित्य अभ्यास से शरीर की शुद्धि होती है।

पूरकः कुरुते पुष्टिं धातुसाम्यं तथैव च।
कुम्भकस्तंभनं कुर्याज्जीवरक्षा विवर्धनम्।।४।।

पूरक से शरीर को आवश्यक पोषण प्राप्त होता है। इससे धातुओं में संतुलन स्थापित होता है। कुम्भक के द्वारा शरीर में प्राण का संचालन होता है तथा जीव की रक्षा में वृद्धि होती है।

रेचको हरते पापं कुर्याद्योगपदं व्रजेत्।
पश्चात्संग्रामे च तिष्टेल्लयबंधं च कारयेत्।।५।।

रेचक पापों को अर्थात् शरीर की अशुद्धियों को नष्ट करता है। इस पर ध्यान करने वाला योगी योगपद को प्राप्त होता है और युद्ध के समय पीछे खड़ा होकर सभी इन्द्रियों को लय करके प्राणायाम के बल से लयबंध मुद्रा करके विजय प्राप्त करता है।

चन्द्रं पिबति सूर्यश्च सूर्यः पिबति चन्द्रमाः।
अन्योन्यकालभावेन जीवेच्चन्द्रार्कतारकम्।।६।।

जो योगीश्वर अनुलोम-विलोम का अभ्यास करता है अर्थात् चन्द्रमा को सूर्य से पीता है अर्थात् बाईं ओर से श्वास लेता है तथा दाईं ओर से बाहर निकालता है और सूर्य को चन्द्रमा से पीता है अर्थात् दाईं ओर से श्वास लेता है तथा बाईं ओर से बाहर निकालता है, वह परस्पर समय की भावना करके तब तक जियेगा, जब तक सूर्य, चन्द्रमा और तारे रहेंगे।

स्वीयांगे वहतेनाड़ी तन्नाड़ी रोधनं कुरु।
मुखबंधममुंचन्वै पवनं जायते युवा।।७।।

इस प्रकार योगी अपने प्रवाहित स्वर को रोककर दूसरे से अर्थात् अप्रवाहित स्वर से श्वास लेकर, मुख के अन्दर ही रोककर नवद्वार बंध को नहीं छोड़ता हुआ अन्तरंग कुम्भक करता है। ऐसा करने से वृद्ध व्यक्ति भी पुनः युवा हो सकता है।

मुखनासाक्षिकर्णाभ्यामंगुलीभिर्निरोधयेत्।
तत्त्वोदयमितिज्ञेयं षण्मुखी करणं प्रिये।।८।।

शिव जी पार्वती को कहते हैं– कि योगी मुख, नासिका, नेत्रों और कानों को हाथ की अंगुलियों से बन्द करके, सक्रिय तत्त्व पर ध्यान करे। इस मुद्रा के अभ्यास को 'षण्मुखी मुद्रा' कहते हैं।

तस्य रूपं गतिः स्वादो मण्डलं लक्षणं त्विदम्।
यो वेत्तिमानवो लोके स तु क्षुद्रोऽपि योगवित्।।९।।

जे व्यक्ति नित्य 'षण्मुखी मुद्रा' का अभ्यास करता है, वह सक्रिय तत्त्व का रूप, गति, स्वाद, मण्डल और लक्षण पहचान सकता है। इस प्रकार ऐसा जीव जो 'षण्मुखी मुद्रा' का अभ्यास करता है, वह पुरुष क्षुद्र भी हो, तो भी उसे योगी जानना चाहिए।

निराशी निष्कलो योगी न किंचिदपि चिंतयेत्।
वासनामुन्मनीभूत्वा कालं जयति लीलया।।१०।।

जो योगी पुरुष निराश रहे अर्थात् इच्छा–कामनाओं से मुक्त रहे, कल्पना रहित मन से कुछ भी चिन्तन न करे। जिसने वासनाओं को जीत लिया है। ऐसा योगी संसार में निर्लिप्त रहता हुआ मानों रंगमंच पर लीला का अभिनय करता हुआ काल को जीतता है।

विश्वस्य वेशिकाशक्तिर्नेत्राभ्यां परिदृश्यते।
तत्रस्थ तु मनोयस्य याममात्रं भवेदिह।।११।।

इस जगत् को अन्तरध्यान करके ध्यान करने से माया–शक्ति नेत्रों के चारों ओर दिखाई देती है। वहाँ जिसका मन एक प्रहर के लिए सावधानी से स्थिर हो जाए, तब उसको माया के दर्शन हों।

तस्यायुर्वर्धते नित्यं घटित्रयमानतः।
शिवेनोक्तं पुरातन्त्रे सिद्धसांवरगह्वरे।।९२।।

इस प्रकार ऊपरोक्त विधि से जो प्राणायाम करता है, उस पुरुष की आयु नित्य तीन घड़ी प्रमाण बढ़ती है। शिव जी ने सिद्धसांवर तन्त्रशास्त्र में इस रहस्य का उद्घाटन पार्वती के समक्ष किया था।

बद्धः पद्मासनस्थो गुदपवनमुखं सन्निरुध्याद्विमुच्य
तां तस्या पानरन्ध्रे कुम्भकजितमनिलं प्राणशक्त्या निरुद्धः।
एकीभूतं सुषुम्ना विवरमुपगतं ब्रह्मरंध्रे च नीत्वा निक्षिप्या–
काशमार्गे शिवस्मरणतां यान्ति ये केऽपि धन्याः।।९३।।

जो योगी पद्मासन बाँध कर बैठा हुआ और गुदा को पाँव की एड़ी से बन्द कर, प्राणायाम के बल से रोके हुए पवन के द्वारा कुम्भक करता हुआ वायु को जीतता है। प्राणों की शक्ति द्वारा रोकी हुई पवन शनैः शनैः सुषुम्ना के साथ एक करके, उसी सुषुम्ना के छिद्र के द्वारा ब्रह्माण्ड के निराकार स्थान में छोड़ते हुए, शिव का स्मरण करता है। वे धन्य हैं जो इस पद को प्राप्त करते हैं।

एतज्जानाति योयोगी एतत्पठति नित्यशः।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तो लभते वांछितं फलम्।।९४।।

जो योगी ऊपरोक्त वर्णन को जानेगा और जो इसको नित्य पढ़ेगा, वह सभी दुःखों से मुक्त हो जाएगा। उसकी सभी इच्छाएँ पूरी होंगी तथा वह मोक्ष का अधिकारी होगा।

स्वरज्ञानं शिरो यस्य लक्ष्मीतलपदे भवेत्।
एकत्र शरीरं यस्य तस्य सौख्यं सदा भवेत्।।१५।।

जिस योगी को स्वर का सम्यक ज्ञान होता है, उसके चरणों में लक्ष्मी का वास होता है। इस प्रकार जिसका शरीर और शिर सही दशा में है, वह सदा सुख पाता है।।

प्रणवः सर्व वेदानां ब्रह्माण्डे भास्करो यथा।
मर्त्यलोके तथा पूज्यः स्वरज्ञानी पुमानपि।।१६।।

जैसे सभी वैदिक संहिताओं में ओंकार-अक्षर को श्रेष्ठ कहा है, जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य को भगवान् कहा है, वैसे ही मनुष्यलोक में स्वरज्ञानी को पुरुषों में श्रेष्ठ जानना चाहिए।

नाड़ीत्रयं विजानाति तत्त्वज्ञानं तथैव च।
नैव तेन भवेत्तुल्यं लक्षकोटि रसायनम्।।१७।।

जिस योगी को तीन नाड़ियों और पाँचों तत्त्वों का सम्यक ज्ञान होता है, उस पुरुष के समान लाख करोड़ रसायन भी नहीं हो सकते। अर्थात् उसको किसी प्रकार की औषधि एवं रस-रसायन की आवश्यकता नहीं होती।

एकाक्षरप्रदातारं नाड़ीभेद निवेदकम्।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वा चात्रृणी भवेत्।।१८।।

स्वर-ज्ञान का ज्ञाता यदि नाड़ियों के सम्बन्ध में एक शब्द भी बताये, तो संसार में इससे अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ भी नहीं। उस पुरुष को पृथ्वी का सारा धन भी दे दिया जाए तो भी ऋण नहीं छूट सकता।

स्वरतत्त्वं तथा युद्धं देवविवश्यं त्रियस्तथा।
गर्भानृरोगकालाख्यं नवप्रकरणान्वितम्।।१९।।

यह जो स्वरोदय शास्त्र है इसके नौ प्रकरण हैं– स्वर–प्रकरण, तत्त्व–प्रकरण, युद्ध–प्रकरण हे देवी! वशीकरण–प्रकरण, गर्भ–प्रकरण, संवत्सर–प्रकरण, रोग–प्रकरण, नाड़ी–प्रकरण एवं काल–प्रकरण। इन नवों प्रकरणों वाला यह स्वरोदय शास्त्र है।

एवं प्रवर्तितंलोके प्रसिद्धं सिद्धयोगिभिः।
आचन्द्रार्कग्रहं जीयान् पठतां सिद्धिदायकम्।।२०।।

इस प्रकार से यह शास्त्र लोक में प्रसिद्ध हुआ और सिद्धों एवं योगियों ने इसे धारण किया है। जो इसका पाठ करने वाला है वह तो सूर्य, चन्द्रमा जब तक हैं तब तक जीवित रहेगा अर्थात् उसको आजीवन किसी प्रकार का रोग, भय आदि नहीं होगा। इस प्रकार की सिद्धि प्राप्त करेगा।

इति श्री शिवोमासंवादे नवप्रकरणान्वितं पवनविजयं नाम स्वरोदयं भाषासहितं समाप्तम्।

इसी के साथ पार्वती एवं शिव का संवाद रूपी नौ प्रकरणों का पवनविजय–स्वरोदय ग्रन्थ अनुवाद के साथ समाप्त होता है।

....

परिशिष्ट–१

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोक | **पृ.**

अ

अंगुष्ठतर्जनीवश्ये पादांगुष्ठस्तथाध्वनिः।
युद्धकाले च कर्त्तव्यं लक्षयोधजयीभवेत्।। ८४

अत एव प्रवक्ष्यामि शरीरस्थं सुरोदयम्।
हंसचारस्वरूपेण भवेज्ज्ञानं त्रिकालजम्।। २९

अतिवृष्टिः सुभिक्षं स्यादारोग्यं सौख्यमेव च।
बहुसस्या तथा पृथ्वी आपस्तत्त्वं वहेद्यदि।। १०१

अधोवाही गुरुध्वनिः शीघ्रगः शीतलः सितः।
यः षोडशांगुलोवायुः स आपः शुभकर्मकृत्।। ६५

अनादि विषमां सन्धिं निराहारं निराकुला।
परे सूक्ष्मविलीयंते सासन्ध्या सन्धिरुच्यते।। ५६

अनेन लक्षयेद्योगी चैकचित्त समाहितः।
सर्वमेव विजानीयान्मार्गवै चन्द्रसूर्ययोः।। ३८

अनेन विधिना कामी वशयेत्सर्वकामिनी।
इदं न वाच्यमन्यस्मिन्नित्याज्ञा परमेश्वरी।। ९३

अपि चौराधमानाड्या अनिष्टया वादिनेग्रहा।
कर्त्तव्या खलुरिक्तायां जयलाभसुखार्थिभिः।। ४६

अपूर्णे शत्रुसामग्रीं पूर्णेच स्वबलं तथा।
कुरुते पूर्णतत्त्वस्थो जयत्येको वसुंधराम्।। ८३

श्लोक	पृ.
अयनतिथिदिनेशः स्वीयतत्त्वेन युक्तो यदिवहति कदाचिद्दैवयोगेन पुंसाम्। स जयति रिपुसैन्यं स्तंभमात्रस्वरेण प्रभवति न च विघ्नं केशवस्यापि लोके।।	८१
अयोग्ययोग्यतानाड़ी योग्यस्थानेऽप्ययोग्ता। कार्यैनिबन्धनो जीवः कथं रुद्रं समाचरेत्।।	४८
अरुंधती ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च। आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थ मातृ मण्डलम्।।	११०
अर्थकालजयप्रश्नं शुभाशुभमिति त्रिधा। ऐतत्त्रिकालविज्ञानं नान्यद्भवति सुन्दरि।।	७६
अष्टमे सिद्धयश्चाष्टौ नवमे निधयो नव। दशमे दशमूर्तिश्च छायानाशो दशैकके।।	७९
अष्टाक्षरं जपित्वा तु तस्मिन् काले गते सति। तत्क्षणं दीयते चन्द्रो मोहमायाति कामिनी।।	९२
अष्टांगुलं वहेद्वायुरनलश्चतुरंगुलः। द्वादशांगुलं माहेयं वारुणः षोडशांगुलम्।।	६३
अस्थिमांस त्वचानाड़ी रोमंचैव तु पंचमम्। पृथ्वी पंच गुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम्।।	७०
अस्यांतस्तु पृथिव्यादि तत्त्वज्ञानं भवेत्क्रमात्। पीतश्वेतारुणश्यामैर्विन्दुभिर्निरुपाधिखम्।।	६१
अहोरात्रं यदैकत्र वहते यत्र मारुतः। तदा तस्य भवेदायुः संपूर्णसंवत्सरत्रयम्।।	१०८

श्लोक **पृ.**

अहोरात्र द्वयं यस्य पिगलायां सदागतिः।
तस्य वर्ष द्वयं प्रोक्तं जीवितं तत्त्ववेदिभिः।। १०८

अहोरात्रस्य मध्ये तु ज्ञेया द्वादश संक्रमात्।
वृष कर्कट कंन्याली मृग मीन निशाकरे।। ४२

आ

आकृष्य प्राणपवनं समारोहेच वाहनम्।
समुत्तरे पदं दद्यात्सर्वकार्याणि साधयेत्।। ८२

आघ्राणमिति चन्द्रस्य यावन्निद्रा वशंगता।
पश्चाज्जाग्रतवेलायां चोष्यती गलचक्षुषी।। ९३

आदौ चन्द्रसिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे ।
प्रतिपद्या दिनान्याहस्त्रीणित्रीणि क्रमोदयम्।। ४०

आदौ तु क्रियते मुद्रा पश्चात्युद्धं समाचरेत्।
सर्पमुद्रा कृता येन तेषां सिद्धिर्नसंशयः।। ८३

आदौ शून्यगते दूते पश्चात्पूर्णो विशेद्यदि।
मूर्छितोऽपि ध्रुवं जीवे यदर्थं परिपृछति।। १०४

आदौ साधनमाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
बद्धपद्मासनो योगी बंधयेदुड्डियानकम्।। ११२

आपः पूर्वे पश्चिमे पृथ्वी तेजश्च दक्षिणे तथा।
वायुश्चोत्तरदिग्ज्ञेयो मध्यकोणे गतं नभः।। ६७

आपः श्वेतः क्षितिः पीत्वा रक्तवर्णो हुताशनः।
मारुतो नीलजीमुत आकाशं सर्ववर्णकं।। ६२

आयाति वारुणे तत्त्वे तत्रस्थोऽपि शुभं क्षितौ।
प्रयाति वायुतोऽन्यत्र हानिर्मृत्यु नभोऽनिले।। ६८

श्लोक पृ.
आर्तिशोकविशादे च ज्वरिते मूर्छितेऽपि च।
स्वजने स्वामि संबन्धे धान्यादि दायसंग्रहे।। ५०

आवर्तगश्चात्युस्णश्च सोनाभश्चतुरंगुल।
उर्ध्ववाही च यः क्रूरकर्मकारी सतैजसः।। ६५

इ
इदं सुरोदयं ज्ञानं सर्वशास्त्रोत्तमोत्तमम्।
आत्मघट प्रकाशार्थं प्रदीप कलिकोपमम्।। ३३

इड़ागंगेति विज्ञेया पिंगला यमुनानदी।
मध्ये सरस्वती विद्यात्प्रयागः संगमस्तथा।। ११२

इड़ायां च स्थितश्चंद्रो पिंगलायां च भास्करः।
सुषुम्ना शंभु रूपेण शंभुं हंस स्वरूपकम्।। ३७

इड़ायां सिद्धिदं प्रोक्तं योगाभ्यासादि कर्म च।
तत्रापि वर्जयेद्वायुस्तेजश्चाकाशमेव च।। ५१

इड़ा वामे च विजया पिंगला दक्षिणे स्मृता।
इड़ा नाड़ी स्थिता वामे ततो व्यस्ता च पिंगला। ३७

इड़ा वामे स्थिता भागे दक्षिणो पिंगला स्मृता।
सुषुम्ना मध्यदेशेतु गांधारी वामचक्षुषी।। ३५

ई
ईक्षितव्यं प्रयत्नेन यदा प्रत्यूषकालतः।
कालस्य वंचनार्थाय कर्मकुर्वन्ति योगिनः।। ६१

ईश्वरः चिंतितं कार्यं योगाभ्यासादि कर्मसु।
अन्य तत्र न कर्त्तव्यं पुण्यदानादि कोटिधा।। ५५

श्लोक	पृ.
उ	
उत्पातोपद्रवा भीतिरल्पावृष्टि सुरात्रयः। मेषसंक्रांति वेलायां वायुतत्त्वं वहेद्यदि।।	१०१
उभयोरेव संचारे विषुवंतं विदुर्बुधाः। न कुर्यात्क्रूरं सौम्यानि तत्सर्व निष्फलं भवेत्।।	५४
उस्मीशीतकृष्णवर्णः तिर्यग्गामी चाष्टांगुलः। वायुः पवनसंज्ञोऽयं चरकर्म सुसिद्धिदः।।	६५
ऊ	
ऊर्ध्वं मृत्युरधः शान्तिः तिर्यगुच्चाटने तथा। मध्येस्तभं विजानीयान्नभः सर्वत्रमध्यगः।।	६३
ऊर्ध्ववामाग्रतो ज्ञेयो वामेच पथि स्थितः। पृष्ठे दक्षे तथाध्यक्षा सूर्यवाहाग्रत शुभम्।।	५६
ऋ	
ऋत्वारंभे रविः पुसां ऋत्वन्ते तु सुधाकरः। अनेनक्रमनानेन नादत्ते दैव दंडकः।।	९५
ए	
एकस्य भूतस्य विपर्ययेण रोगाभिभूतिर्भवतीह पुंसाम्। तयोर्द्वयोर्बन्धु सुहृद्विपत्तिः पक्षद्वये व्यत्ययता मृतिः स्यात्।।	१०५
एकांगुलकृते न्यूने प्राणे निष्कामता मता। आनंदस्तु द्वितीये स्यात् कविशक्तितृतीयके।।	७८
एकाक्षर प्रदातारं नाड़ीभेद निवेदकम्। पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वा चाऋणी भवेत्।।	११६

श्लोक	पृ.
एकादिषोडशाहानि यदि भानु निरंतरम्। वहेद्ययस्य च वै मृत्युः शेषाहेन् च मासिकैः।।	१०९
एकैकस्य घटीपंच क्रमेणैवोदयन्ति च। क्रमादेकैक नाड्यस्तु तत्त्वानां पृथगुद्भवम्।।	४२
एतज्जानाति योयोगी एतत्पठति नित्यशः। सर्वदुःखविनिर्मुक्तो लभते वांछितं फलम्।।	११५
एवं प्रवर्तितंलोके प्रसिद्धं सिद्धयोगिभिः। आचन्द्रार्कग्रहं जीयान् पठतां सिद्धिदायकम्।।	११७
एवं प्राणविधिः प्रोक्ताः सर्वकार्य फलप्रदा ज्ञायते गुरुवाक्येन न विद्याशास्त्रकोटिभिः।।	७९
एवमष्टविधं प्राणं विषुवंतं चराचरम्। स्वरात्परतरं देवि नान्यथा त्वंबुजासने।।	६०
क	
कथं प्राणस्थितो वायुर्देहे किं प्राणरूपकम्। तत्त्वेषु संचरन्प्राणो ज्ञायते योगिभिः कथम्।।	७७
कथं ब्रह्माण्डमुत्पन्नं कथं वा परिवर्तते। कथं विलीयते देव वद ब्रह्माण्डनिर्णयः।।	२७
कन्याप्राप्तिः स्वरबले स्वरेव राजदर्शनं। सवरेणदेवतासिद्धिः स्वरेण क्षत्रियो वशः।।	३२
काया नगर मध्येतु मारुतो रक्षपालकः। प्रवेशे दशभिः प्रोक्तो निर्गमे द्वादशांगुलः।।	७८
कालत्रय दिनान्यष्टौ विपरीतं यदावहेत्। तदा दुष्टफलं ज्ञेयं किंचित्पुण्यं तु शोभनम्।।	४४

श्लोक **पृ.**

कालविज्ञानसूत्रे च चतुष्पदग्रहागमे।
कालव्याधि चिकित्सांच स्वामि संबंधने तथा।। ५०

कुयोगो नास्ति देवेशि भवन्ति नकदाचन।
प्राप्ते स्वरबले युक्ते सर्वमेव फलं शुभम्।। ३३

कुहुश्च लिंगदेशेतु मूलस्थानेच शंखिनी।
एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्टन्ति दशनाड़िका।। ३६

कोणादक्षांगुलीभ्यां तु कीचित्पीड्यनिरीक्षेत्।
यदा न दृश्यते विंदुर्दशाहे न जयी मृतः।। ११०

कुजो वह्निः रविः पृथ्वी सौरिरापः प्रकीर्तितः।
वायु स्थानस्थितो राहुः दक्षरंध्र प्रवाहकः।। ६८

कूराणि सर्वकर्माणि चराणि विविधानि च।
तानि सिद्यन्ति सूर्येण नात्रकार्या विचारणा।। ५३

क्षणंवामे क्षणंदक्षे यदा वहति मारुतः।
सुषुम्ना सा च विज्ञेया सर्वकार्यहरा स्मृता।। ५४

क्षणंवामें क्षणं दक्षे विषमं भावमादिशेत्।
विपरीतं फलंज्ञेयं ज्ञातव्यं च वरानने।। ५४

क्षुधा तृष्णा तथा निद्रा कान्तिरालस्यमेव च
तेजः पंचगुणं प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम।। ७१

ख

खड्गहस्ते वैरियुद्धे भोगे वा राजदर्शने।
भोज्यस्थाने व्यवहारे कूरदीप्ति रवीशुभम्।। ५३

खरोष्ट्र महिषादीनां गजाश्वारोहणे तथा।
नदी जलौच तरणे भेषजे निखिले स्वने।। ५२

श्लोक **पृ.**

ग

गगनात्स्रवते चन्द्रः कालपद्मानि सिंचयेत्।
कर्मयोगसदाभ्यासैरमरः शशिसंस्रवात्।। १०८

गजस्यारोहणे धन्वी गजादिनांच बंधने।
परोपकारिणे चैव निधीनां स्थापने तथा।। ५०

गतायुर्मृत्युराकाशो चन्द्रावस्थाः प्रकीर्तिताः।
द्वादशैता प्रयत्नेन ज्ञातव्याः दैशिकैः सदा।। ७०

गत्यभ्यासे यंत्र मंत्रे दुर्गपर्वतरोहणे।
द्युते चौर्ये गजाश्वादि रथसाधनवाहने।। ५२

गमने तु चतुर्विंशा नेत्रवेदास्तु धावने।
मैथुने पंचषष्टिश्च शयने च शतांगुलः।। ७८

गर्भाधानं मारुतं स्यात्चदुःखी
दशाख्यातो वारुणी सौख्ययुक्तः।
गर्वस्रावी स्वल्पजीवीच वह्नौ
भौगी भव्या पार्थिवी चार्थयुक्तः।। ९७

गांधारी हस्तिनी जिह्वा पूषाचैव यशस्विनी।
अलंबुषा कुहुष्चैव शंखिनी दशमी तथा।। ३५

गीतवाद्यादि नृत्यादौ गीतशास्त्रविचारणे।
पुरग्रामनिवेशेच तिलकं छत्रधारणे।। ५०

गुरुबन्धुनृपामात्य–अन्येऽपि शुभदायिनो।
पूर्णांगे खलु कर्त्तव्याकार्यसिद्धिमभीप्सिता।। ४६

श्लोक	पृ.
गुरुशुक्रबुधेन्दूनां वासरे वामनाड़ीका। सिद्धिदा सर्वकार्येषु शुक्लपक्षे विशेषतः।।	४१
गुह्याद् गुह्यतरं साक्षादुपकारप्रकाशनम्। इदं सुरोदयं ज्ञानं ज्ञानिनां मस्तके मणिः।।	२९
ग्रहप्रवेशे सेवायां कृषौ च बीजवापने । शुभकर्माणि संधौ च निर्गमे च शुभं शशि।।	४९
च	
चतुरस्रं चार्धचन्द्रं त्रिकोणं वर्तुलंस्मृतम्। विन्दुभिस्तु नभोज्ञेयं आकारैस्तत्त्व लक्षणम्।।	६२
चन्द्रं पिबति सूर्यश्च सूर्यंपिबति चन्द्रमाः। अन्योन्यकालभावेन जीवेच्चन्द्रार्कतारकं।।	११३
चन्द्रं सूर्येण वा कृष्यस्थापयेज्जीव मण्डले। आजन्मवशगा रामा कथितोऽयं तपोधनैः।।	९१
चन्द्रकाले यदा सूर्यो सूर्यश्चन्द्रोदयोभवेत्। उद्वेग कलहोहानिं शुभं सर्वं निवारयेत्।।	४३
चन्द्रवारे वंशहन्ति सूर्यो वेला वंशनयेत्। सुषुम्नायां भवेन्मोक्षं एको देवस्त्रिधा स्थितः।।	४८
चन्द्रवारो चतुष्पादापंचपादाश्च भासकरे। एवं च गमने श्रेष्टं साध्येत्भुवनत्रयम्।।	४५
चन्द्रे पृथ्वीजलैस्यातां सूर्यवाग्निर्यदाभवेत्। तदा सिद्धिर्नसंदेहः सौम्यासौम्येषु कर्मसु।।	६७
चन्द्रे स्त्री पुरुषः सूर्ये मध्यभागे नपुंसकः। गर्भप्रश्ने यदा दूतः पूर्णपुत्रः प्रजायते।।	९६

श्लोक	पृ.
चन्द्रोदयस्य वेलायां वमानो तत्त्वतः। पृथिव्यापस्तथावायुः सुभिक्षं सर्व सस्यजम्।।	९९
चन्द्रः समे यदा कार्यो रविस्तु विषमे सदा। पूर्णपादपुरस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा।।	४५
चन्द्रः स्त्री पुरुषः सूर्यो चन्द्रगौरसितो रविः। चन्द्र नाड़ी प्रवाहेच सौम्यं कर्माणि कारयेत्।।	४०
चन्द्रनाड़ी वहेत् प्रश्ने गर्भे कन्या तदा भवेत्। सूर्ये भवेत्तदा पुत्रो द्वयोगर्भौ विहन्यते।।	९६
चन्द्र प्रवाहेप्यथ सूर्यवाहे भट्टाः समायांति च योद्धुकामाः। समीरणः तत्त्वविदा प्रपीत्वा याशून्यतासां प्रतिकालदृष्टिः।।	८३
चन्द्रसूर्यौ सदाभ्यासं ये कुर्वन्ति सदानरः। अतीतानागतं ज्ञानं तेषां हस्तगतः सदा।।	३९
चन्द्रस्थाने स्थितो जीवः सूर्य स्थाने तु पुच्छकः। तदाप्राण विमुक्तोऽसौ यदि वैद्यशतैर्वृतः।।	१०५
चिरलाभः क्षितिर्ज्ञेयः तत्क्षणात्तोयस्तत्त्वतः । हानिः स्याद्वह्निवाताभ्यां नभसो निष्फलंभवेत्।।	६४
चैत्रशुक्लप्रतिपदि प्रातस्तत्त्वविभेदितः। पश्येद्विचक्षणो योगी दक्षिणे चोत्तरायणे।।	९९
ज	
जन्मांतरीय संस्कारात्प्रसादादथवा गुरोः। केषां चिच्जायते तत्त्वे वासना विमलात्मनाम्।।	७४

श्लोक	पृ.
जलचन्द्रो बुधः पृथ्वी गुरुर्वातः सितोऽनलः। वामनाड्यां स्थिताः सर्वे सर्वकार्येषु निश्चिता।।	६९
जीवरक्षज्जीवरक्षां जीवांगे परिधायच। जीवो जयति यो युद्धे जीवाज्जयति मेदिनीम्।।	८२
जीवाकारं च वा धृत्वा जीवाकर विलोका च। जीवस्थो जीवितं प्रश्ने तस्य स्याज्जीवितं फलम्।।	१०४
जीवितव्यो जये लाभे कृष्यां च धनकर्षणे। मन्त्रार्थे युद्ध प्रश्ने च गमनागमने तथा।।	६८
जीविते मरणे प्रश्ने लाभालाभौ जयाजयौ । विषुवे विपरीत्यं स्यात्संस्मरेज्जगदीश्वरम्।।	५४
जीवेन गृह्यते जीवो जीवो यस्य तु दीयते। जीवस्थाने गतो जीवो बाला जीवांतकारकः।।	९१
जीवेन शास्त्रं वध्नीया जीवेनैव विकासयेत्। जीवेन प्रक्षिपच्छस्त्रं युद्धे जयति सर्वथा।।	८२
जीवेमस्थापयेद्वायुं जीवेनारंभयेत्पुनः। जीवेनक्रीडते नित्यं द्यूतं जयति सर्वथा।।	८९
ड	
डक्कारे नाग आख्यात कूर्म उन्मीलने स्मृतः। कृकलो क्षुत्कृतो ज्ञेयो देवदत्तो विजृंभके।।	३७
त	
तत्त्वमेव परंमूलं निश्चितं ब्रह्मवादिभिः। तत्त्वस्वरूपं किं देव तत्त्वमेव प्रकाशय।।	२८

श्लोक	पृ.
तत्त्वाद् ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्त्वे परिवर्त्तते। तत्त्वे प्रलीयते देवी तत्त्वात्ब्रह्माण्डनिर्ण्यः।।	२७
तत्त्वानां तत्त्वविज्ञेयं सिद्धिर्योगेन योगीनाम्। भूतानां दृष्टचिह्नानि जानन्ति हि स्वरोत्तमाः।।	५९
तत्त्वे रामो जयं प्राप्तः सुतत्त्वे च धनंजयः। कौरवानिहिताः सर्वे युद्धे तत्त्वविपर्यये।।	७३
तत्त्वे शुभाशुभं कार्यं तत्त्वे जयपराजयः। तत्ते समर्घ महार्घ तत्त्वं त्रिपदमुच्यते।।	७६
तस्मात्तत्र न गंतव्यं बुधैः सर्वहितेषुभिः। तदा तत्र तु संयातं मृत्युरेव न संशयः।।	४३
तस्य रूपं गतिः स्वादो मण्डलं लक्षणं त्विदम्। यो वेत्तिमानवो लोके सतुक्षुद्रोऽपि योगवित्।।	११४
तस्यां नाड्यां स्थितोवह्नि ज्वलतं कार्यभाविणम्। विषुवंतं विजानीयात्सर्वकार्य विनाशनम्।।	५४
तस्यायुर्वर्धते नित्यं घटित्रयमानतः शिवेनोक्तं पुरातन्त्रे सिद्धसांवरगह्वरे।।	१०५
तासां मध्ये दश श्रेष्ठा दशानां तिस्र उत्त्माः। इड़ाच पिंगला चैव सुषुम्ना च तृतीयका।।	३५
तिर्यगुर्ध्वमधस्ताच्च वायुर्देह समन्विता। चक्रवत्संस्थिता देहे सर्वे प्राणान्समाश्रिताः।।	३४
तिष्टेत्पूर्वोत्तरे चन्द्रो भानुः पश्चिमदक्षिणे। दत्तनाड़ी प्रसारेण न गच्छेद्वामपश्चिमे।।	४२

श्लोक **पृ.**

तिष्ठन्नुपविशेत्वापि प्राणमायेन्निजंमनः।
मनोभंगमकुर्वाणः सर्वकार्येषुजीवति।। ८८

तुष्टिः पुष्टिरतिः क्रीड़ा जयहास्य धराजले।
तेजो वायुश्च सुप्राज्ञः ज्वरकंप प्रवासिनः।। ७०

तेजोव्योम्नि भयंघोरं दुर्भिक्षं कालतत्त्वतः।
एवं वर्षफलं ज्ञेयं वर्षेमासे दिनेतथा।। ९९

तेभ्यो ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तैरेव परिवर्त्तते।
विलीयते च तत्रैव तत्रैव रमते पुनः।। २९

त्रिरात्रं वहते यस्य वायुरेकपुटेस्थितः।
तदा संवत्सरादस्य प्रवदन्ति मनीषिणः।। १०९

द

दक्षिणेन यदा वायुः दुःखंरौद्राक्षरैर्वदेत्।
तदा जीवति जीवोऽसौ चन्द्रे समफलं समम्।। १०४

दक्षिणे हस्तजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे।
यशस्विनी वामकर्णे आनने चाप्यलंवुषा।। ३५

दर्पनेन समालोक्य तत्र श्वासं च निक्षिपेत्।
आकारैस्तु विजानीया तत्त्वभेदं विचक्षणैः।। ६३

दशशतायुतं लक्षं देशाधिपबलंक्वचित्।
शतक्रतुसुरेन्द्राणां बलंकोटि गुणंभवेत्।। ८९

दुर्भिक्षं राष्ट्रभंगस्याद्रोगोत्पत्ति सुधारुणा।
अल्पादल्पतरावृष्टिरग्नितत्त्वं भवेद्यदि।। १०१

दुष्टे च दुर्जने क्रोधे असत्ये गुरुतल्पगे।
हीनसत्त्वे दुराचारे सुरज्ञानं न दीयते।। ३०

श्लोक **पृ.**

दूरंदेशे विघातव्यं गमनं तु हिमद्युतौ।
अभ्यर्णदिशे हीने तु तरणाविति केचन। ४६

दूराध्वाने शुभश्चन्द्रो निर्विघ्नो नेष्टसिद्धिदः।
प्रवेशे कार्यहानिषु सूर्यो शीघ्रं प्रशस्यते।। ४७.

दूरयुद्धेजयीश्चंद्रः समासन्नेदिवाकरः।
वहन्नाड्यागतः पादे सर्वसिद्धिः प्रजायते।। ८१

देवदेवमहादेव कृपां कृत्वा ममोपरि।
सर्वसिद्धिकरं ज्ञानं कथयस्व ममप्रभो।। २७

देवदेवमहादेव महाज्ञानं स्वरोदयम।
त्रिकालविषयं चैव कथं भवति शंकर।। ७५

देव देव महादेव सर्वसंसारतारकः।
स्थितस्त्वं दीपहृदये रहस्यं वद मे प्रभो।। ५८

देवदेव महादेव सर्वसंसारसागरे।
किं नराणां परंमित्रं सर्वकार्यार्थसाधकम्।। ७७

देह मध्ये स्थिता नाड्यो बहुरूपा सुविस्तराः।
ज्ञातव्याश्च वुधैर्नित्यं स्वदेह ज्ञान हेतवे।। ३४

देहे तिर्यग्रतानाड्यश्चतुर्विंशति संख्यया।
प्रधाना दशनाड्यस्तु दशवायुप्रवाहका।। ३४

द्वादशे हंसचारश्च गंगामृतरसं पिवेत्।
आनखाग्रे प्राणपूर्णे कस्य भक्ष्यं च भोजनम्।। ७९

ध

धनवान्सौख्ययुक्तश्च भोगवान्गर्भसंस्थितः।
स्यान्नित्यं वारुणे तत्त्वे व्योम्निगर्भो विनश्यति।। ९७

श्लोक	पृ.
धनिष्ठा रोहिणी ज्येष्ठानुराधा श्रवणस्तथा। अभिजिच्चोत्तराषाढ़ा पृथ्वी तत्त्वमुदाहृतम्।।	७२
धावनं चलनं गन्धं संकोचनप्रसारणम्। वायुः पंचगुणाः प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम।।	७१
ध्यायेत्तत्त्वं स्थिरेजीवे अस्थिरे न कदाचन। इच्छासिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयं तथा।।	३९
ध्यायेद्देवं स्थिरेजीवे जुहुजाज्जीवसंगर्मे। इच्छासिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयस्तथा।।	९०
न	
न जहाति मृतं चापि सर्वव्यापी धनंजयः। एता नाड़ीसु सर्वासु भ्रमंते जीवरूपिणे।।	३८
न तिथिर्न च नक्षत्रं न वारो ग्रहदेवता। न च व्यष्टिर्व्यतीपात वैधृताद्यास्तथैव च।।	३३
नरयुद्धं यमयुद्धं त्वया प्रोक्तं महेश्वर। इदानीं देवदेवानां वशीकरणकं वद।।	९१
नवभ्रुवो सप्तप्रोथं पंचतारा त्रिनासिका। जिह्वा एकदिनं प्रोक्तं म्रियते मानवो ध्रुवम्।।	११०
न वेदं वेदमित्याहुर्वेदाद्वेदो न विद्यते। परमात्मा विद्यते येन सवेदो वेद उच्यते।।	५७
न संध्या सन्धिमित्याहुः संध्यासन्धि निगच्छते। विषुवत्सन्धिगा प्राणा सासंध्या सन्धिरुच्यते।।	५६
न हानिः कलहः नैव कंटकैर्नापि भिद्यते। निवर्तते सुखेनैव सर्वोपद्रववर्जिताः।।	४६

श्लोक **पृ.**

नागः कृकल कूर्मश्च देवदत्तो धनंजयः।
हृदि प्राणो वसेन्नित्यं अपानो गुह्य मंडले।। ३६

नाड़ीदक्षा स्वकीया च स्त्रीयां वामा प्रशस्यते।
कुंभकं युद्धकाले च त्रयो नाड़ी त्रयो गतिः।। ८५

नाड़ीत्रयं विजानाति तत्त्वज्ञानं तथैव च।
नैव तेन भवेत्तुल्यं लक्षकोटि रसायनम्।। ११६

नाड़ीभेदं तथा प्राणं तत्त्व भेदे तथैवच।
सुषुम्ना मिश्रभेदं च यो जानाति स मुक्ति भाक्।। ३१

नाभिस्था कुण्डलीशक्तिः भुजंगाकार शायिनी।
ततो दशोर्ध्वगा नाड्यो दशैवाधः प्रतिष्ठिताः।। ३४

नाभिस्थानक कण्ठोर्ध्व अंकुरादेवनिर्गतः।
द्विसप्तति सहस्राणि देहमध्ये व्यवस्थिताः।। ३४

नामानि नाड़िकानां तु वाहानां प्रवदाम्यहम्।
प्राणापानसमानश्च उदानव्यान एव च।। ३६

नामरूपादिका सर्वे मिथ्या सर्वेषु विभ्रमाः।
अज्ञानमोहिता मूढ़ा यावत्तत्त्वं न विद्यते।। ३३

निमित्तकप्रसादाद्वा यदानजायतेऽनिलः।
पृछाकाले तदाकुर्याद्द्वंद्वयुद्धेन बुद्धिमान्।। ८८

निरंजनो निराकारो एको देवो महेश्वरः।
तस्मादाकाशमुत्पन्नमाकाशाद् वायु सम्भवः।। २८

निराकारात्समुत्पन्नं साकारं सकलं जगत्।
तत्साकारं निराकारे ज्ञाते भवति तन्मयम्।। ९०

श्लोक **पृ.**

निराशी निष्कलो योगी नकिंचिदपि चिंतयेत्।
वासनामुन्मनीभूत्वा कालं जयति लीलया।। ११४

निर्गमे तु शुभा वामा प्रवेशे दक्षिणा शुभा।
चन्द्रः समस्तु विज्ञेयो रविस्तु विषमे सदा।। ४०

निशाकरे रवौवारे मध्येयस्य समीरणः।
स्थितो रक्षेद्दिगंतानि जयकांक्षो नरः सदा।। ८५

निश्चलां धारणां कृत्वा पुष्पंहस्तान्निपातयेत्।
पूर्णांगें पुष्पपतनं शून्ये वा तत्फलं वदेत्।। ८८

नीलं च वर्तुलाकारं स्वाद्वम्लं तिर्यगाश्रितम्।
चपलं मारुतं तत्त्वं प्रवाहे-अष्टांगुलं स्मृतम्।। ६६

प

पंचतत्त्वाद्भवेत् सृष्टिः तत्ते तत्त्वं विलीयते।
पंचतत्त्वं परं तत्त्वं तत्त्वातीतं निरंजनम्।। ५९

पंचतत्त्वमये देहे पंचतत्त्वानि सुन्दरी।
सूक्ष्मरूपेण वर्त्तन्ते ज्ञायन्ति तत्त्वयोगिभिः।। २९

पंचमे तस्य वर्णस्च षष्ठे तु प्राणमेवच।
सप्तमे स्वाद संयुक्तमष्ठमे गतिलक्षणम्।। ६०

पंचमे राजविध्वंसं षष्टे सर्वार्थनाशनम्।
सप्तमे व्याधि दुःखानि अष्टमे मृत्युमादिशेत्।। ४४

पंचभूतात्मकं दीपं शशिस्नेहेन सिंचितम्।
रक्षेत्सर्ववातेन तेनजीवस्थितो भवेत्।। १०७

परदत्ते तथाग्राह्ये गृहान्निर्गमनेऽपि च।
यदंगे बहति वायु ग्राह्यं गति करांघ्रिणा।। ४५

श्लोक **पृ.**

परस्परं मनुष्याणां युद्धेशके जयस्तथा।
यमयुद्धे समुत्पन्ने मनुष्याणां कथंजयः।। ८९

पार्थिवी च समं युद्धं सिद्धिर्भवति वारुणे।
युद्धेहि तेजसिभंगो मृत्युर्वायौ नभस्यपि।। ८८

पार्थिवीमुलविज्ञानं जीवेज्ञानं जलेतथा।
आग्नेयं धातुविज्ञानं व्योम्निशून्यं विनिर्दिशेत्।। ६९

पिंगला कठिनं क्रूरं विप्राणां पठने तथा।
स्त्रीसंगवेश्यागमने महानौकाधिरोहने।। ५१

पिंगलायां स्थितो जीवो वामे दूतस्तु पृच्छति।
तदापि म्रियते रोगी यदि त्राता महेश्वरः।। १०५

पीतं चैव चतुष्कोणं मधुरं मध्यमाश्रितम्।
भोगदं पार्थिवं तत्त्वं प्रवाहे द्वादशांगुलम्।। ६६

पीतः शनैर्मध्यवाही हनुंयावद्गुरु ध्वनिः।
ऊर्ध्वगः पार्थिवौ वायु स्थिरकार्य प्रसादकः।। ६४

पुरा वामोर्ध्वतश्चंद्रो दक्षाधः पृष्टतो रविः
पूर्णरिक्ता विवेकोऽयं ज्ञातव्यो देशिकैः सदा।। ५६

पूरकः कुम्भकश्चैव रेचकश्च तृतीयकः।
ज्ञातव्यो गोगीभिर्नित्यं देहसंसिद्धिहेतवे।। ११२

पूरकः कुरुते पुष्टिं धातुसाम्यं तथैव च।
कुन्भकस्तंभनं कुर्याज्जीवरक्षा विवर्धनम्।। ११३

पूर्णनाड़ी गतः पृष्ठे शून्यमंगं तदग्रतः।
शून्यस्थाने कृते शत्रुर्म्रियते नात्र संशयः।। ८७

श्लोक **पृ.**

पूर्णे प्रवेशने श्वासे स्वस्व तत्त्वेन सिद्धिदः।
सूर्यचन्द्रेऽन्यथा भूते संग्रहः सर्वसिद्धिदः।। १०२

पूर्वायां पश्चिमेवामे उत्तरस्यां यथाक्रमं।
पृथिव्यादीनि भूतानि बलिष्टानि विनिर्दिशेत्।। ७०

पूर्वाषाढ़ातथाश्लेषा मूलमार्द्राच रोहिणी।
उत्तराभाद्रपत्तोयतत्त्वं शतभिषा प्रिये।। ७३

प्रकटं प्राणसंचारं लक्षये देह मध्यतः।
इड़ा पिंगला सुषुम्ना नाड़ीभिस्तिसृभिर्बुधः।। ३७

प्रतिपक्षप्रहारेभ्यां पूर्णागं योऽभिरक्षिते।
न तस्य रिपुभिः शक्तिर्वलिष्टैरपिहन्यते।। ८४

प्रणवः सर्व वेदानां ब्रह्माण्डे भास्करो यथा।
मर्त्यलोके तथा पूज्यः स्वरज्ञानी पुमानपि।। ११६

प्रथमे तत्त्व विज्ञायो द्वितीये श्वास सन्धिषु।
तृतीये स्वरचिह्नानि चतुर्थे स्थानमेवच।। ६०

प्रथमेवहते वायु द्वितीये वहति अनलः
तृतीयेच वाहेन्माहेयः चतुर्थे वारुणं वहेत्।। ६२

प्रथमेऽह्नि उद्वेगं धनहानी द्वितीयके।
तृतीये गमनं प्रोक्तं इष्टनाशं चतुर्थके।। ४४

प्रश्नेचाधः स्थितो जीवो नूनं जीवो हि जीवति।
ऊर्ध्वचारस्थितो जीवो जीवोयाति यमालयम्।। १०४

प्रातर्मध्याह्नयोश्चन्द्र सायंकाले दिवाकरः।
तदा नित्यजयो लाभो विपरीतश्च दुःखदम्।। ४४

श्लोक **पृ.**

प्रातश्चंद्रो रविसायं यदि दैवान्न लभ्यते।
मध्याह्नमध्यारात्राद्वा परतस्तौ प्रवर्तते।। ८०

प्राण एव परंमित्रं प्राण एव परः सखाः।
प्राणतुल्यपरोबन्धुर्नास्ति नास्ति वरानने।। ७७

प्राणस्य तु गतिर्देवी स्वभावाद्द्वादशांगुलः।
भेजने वचनेचैव गतिरष्टादशांगुलः।। ७८

प्राणाद्या पंच विख्याता नागाद्या पंच वायवः।
तेषामपि च पंचानां स्थानानि च वदाम्यहम्।। ३६

पृथां जले शुभं तत्त्वे तेजो मिश्रफलोदये
हानिमृत्युकरौ पुंसांमशुभौ व्योम मारुतौ।। ६७

पृथिवीवै जनयेत्पुत्रः कन्यका तु प्रभंजने।
तेज गर्वपातः स्यान्नभसापि नपुंसकः।। ९६

पृथिवी पलं च पंचाशच्चत्वारिंशदपस्तथा।
तेजस्त्रींशद्विजानीया वायुविंशति दशनभः।। ७१

पृथिव्यां बहुपादास्युर्द्विपदस्तोय वायुतः।
तेजस्वी च चतुष्पादा नभसि पादवर्जितः।। ६८

पृथिव्यां स्थिरकर्माणि चरकर्माणि वारुणे।
तेजसि सर्वकर्माणि मारणोच्चाटनेऽनिले।। ६३

पृथिव्यां मूलचिंतास्याज्जीवस्य जलवातयोः।
तेजसिधातु चिंतास्याच्छून्यमाकाशतो वदेत्।। ६८

पृथिव्यादि तत्त्वेन दिनमासावृतं फलम्।
शोभनं च तथा दुष्टं व्योममारुतवह्निभिः।। १००

श्लोक **पृ.**

पृथिव्यापस्तथातेजो वायुराकाशमेव च।
पंच भूतात्मकं देहं ज्ञातव्यंच वरानने।। ७०

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।
पंचभूतात्मकं सर्व यो जानाति स पूजितः।। ५९

पृथ्वी चिरकाली च लाभश्चापे क्षणाद्भवेत्।
जायते पवनात्स्वल्प सिद्धेप्यग्नौ विनश्यति।। ७२

पृथ्वीजलाभ्यां सिद्धिः स्यान्मृर्त्युवह्नौ क्षयोऽनिले।
नभसो निष्फलं सर्व ज्ञातव्यं तत्त्व वेदिभिः।। ६४

पृथ्वीपंच अपांवेदो गुणस्तेजो द्विवायुतः
नभ-एकं गुणंचैव तत्त्वज्ञानमिदं भवेत्।। ७२

फ

फूत्काररक्तप्रस्फुटिता विद्धोरण्य पतिताधरा।
ददाति सर्वकार्येषु अवस्था सदृशं फलम्।। ७२

ब

बद्धः पद्मासनस्थो गुदपवनमुखं सन्निरुध्याद्विमुच्य
तां तस्या पानरन्ध्रे कुंभकजितमनिलं प्राणशक्त्या निरुद्धः।
एकीभूतं सुषुम्ना विवरमुपगतं ब्रह्मरंध्रे च नीत्वा नक्षिप्या-
काशमार्गे शिवस्मरणतां यान्ति ये केऽपि धन्याः।। ११५

ब्रह्माण्डपिण्डाखण्डोऽयं सुरेणैवहि निर्मितं।
सृष्टिः संहार कर्ताच स्वरः साक्षात्महेश्वरः।। ३१

भ

भरणीकृतिका पुष्यो मघा पूर्वा च फाल्गुणी।
पूर्वाभाद्रपदा स्वाति तेजस्तत्त्वमिति प्रिये।। ७३

श्लोक **पृ.**

भुक्त मात्रेण मंदाग्नौ स्त्रीणां वश्यादिकर्मणि।
शयने सूर्यवाहेण कर्त्तव्यं सर्वदा बुधैः।। ५३

भूमौ जले च कर्तव्यं गमनं शान्ति कर्मसु।
वह्नौ वायौ प्रदीप्तेषु खे पुनर्नोऽभयेष्वपि।। ८२

भूतत्त्वेनोदरे घातः पदस्थानेंदुना भवेत्।
उरुस्थानेऽग्नितत्त्वेन करस्थानेन वायुना।। ८६

भ्रष्टकार्ये सुरा वीरे उग्रमंत्रानुपासने।
विह्वलो ध्वंसदेशादि विषदानादि वैरिणे।। ५१

म

मध्यमा भवति क्रुद्धा दुष्टा सर्वत्र कर्मसु।
सर्वत्र शुभ कार्येषु वामाभवति पुष्टिदा।। ३९

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टासर्वत्र कर्मसु।
देशभंगं महारोगं क्लेशकष्टादि दुःखदा।। १००

मध्ये पृथ्वी ह्यधश्चापश्चोर्ध्व वहति चानिलः।
तिर्यग्वायुप्रवाहश्च नभो वहति संक्रमे।। ६२

मरुतं बन्धयित्वा तु सूर्य बोधयते यदि।
अभ्यासाज्जीवते सूर्यः सूर्यकालेऽपि बंच्यते।। १०७

मही तत्त्वे स्व रोगं च जले च जलमातरः।
तेजसी खेट वायौ च शाकिनी पितृदोषके।। १०३

मारणे मोहने स्तंभे विद्वेषोच्चाटनं तथा।
प्रेरणा कर्षणे क्षोभादाने च क्रयविक्रये।। ५३

मासादौ संवत्सरादौ च पक्षादौ च यथाक्रमम्।
क्षयकालं परीक्षेत वायुरति वशः सुधीः।। १०७

श्लोक **पृ.**

माहेन्द्रे स्वसुतोत्पत्ति वारुणे दुहिताभवेत्।
शेषेषु गर्भहानिः स्याज्जायमानस्य वा मृतिः।। ९८

माहेयं मधुरं स्वादं कषायं जलमेव च।
तिक्तं तेजः समीरोऽमलं आकाशं कटुकं तथा।। ६३

मुखनासाक्षिकर्णाभ्यामंगुलीभिर्निरोधयेत्।
तत्त्वोदयमितिज्ञेयं षण्मुखी करणं प्रिये।। ११४

मूत्रं पुरीषं वायुश्च समकालं पंवर्तते।
तदासौ चलितौ ज्ञेयौ दशाहे म्रियते ध्रुवम्।। ११०

मेषसंक्रांति वेलायां व्योमतत्त्वं वहेद्यदि।
तत्रापि शून्यता ज्ञेया सस्यादीनां सुखस्यच।। १०१

मेषसंक्राति वेलायां स्वरभेदं विचारयेत्।
संवत्सरे फलं ब्रूयात् लोकानां तत्त्वचिंतकः।। १००

मेषे सिंहेच धनुषी तुलायां मिथुने घटे।
उदयो दक्षिणेज्ञेयो शुभाशुभ विनिर्णयः।। ४२

य

यं बीजं पवनं ध्यायेत्वर्तुलश्यामलप्रभम्।
आकाशं गमनाद्यं च पक्षि बद्धमनं तथा।। ७५

यः समीरः समरसः सर्वतत्त्वगुणावहः।
अम्बरं तं विजानीयाद्योगिनां योगदायकम्।। ६५

यत्किंचित्पूर्वमुद्दिष्टं लाभादि सप्तरात्रगे।
तत्सर्व पूर्णनाड़ीषु जायते निर्विकल्पकम्।। ४६

यत्नाड़ी वहते चांगं तत्सयान्नैवाधिदेवता।
सन्मुखापि दिशा तेषां सर्वकार्य फलप्रदा।। ८३

श्लोक **पृ.**

यत्र नाड्यां वहेद्वायुस्तदग्रं प्राणमेव च।
आकृष्य गचछेत्कर्णांते जयत्येव पुरंदरम्।। ८४

यदंगे चरते वायुस्तदंगस्य करस्तलम्।
सुप्तोस्थितो मुखं स्पृष्टवा लभते वांछितं फलम्।। ४५

यदा पृच्छति चंद्रस्थः तदा संधानमादिशेत्।
पृच्छेद्यदास्तु सूर्यस्थस्तदा जानीहि विग्रहम्।। ८८

यस्मिन्नंगे स्थितोजीवस्तत्रस्थः परिपृच्छति।
तदाजीवति जीवोऽसौ यदिरोगैरुपद्रुतः।। १०३

यस्मै परस्मै वा प्रोक्तं प्रोक्तं च प्रश्न हेतवे।
तस्मादेतत्स्वयं ज्ञेयं आत्मनैवात्मनात्मनि।। ३३

यां दिशां वहतेवायुः युद्धं तां दिशिदापयेत्।
जयत्येवं न संदेहः शक्रोऽपि यदि चाग्रतः।। ८४

यात्रारंभे विवाहे च प्रवेशे नगरादिके।
शुभकार्येषु सर्वेषु चंद्रचारः प्रशस्यते।। ८१

युद्धद्वये कृते प्रश्ने पूर्णस्य प्रथमोजयः।
रिक्तचैव द्वितीयस्तु जयीभवति नान्यथा।। ८७

र

रं बीजं शिखिनं ध्यायेत्त्रिकोणमरुणप्रभम्।
वह्वन्नपानभोक्तृत्वमातपाग्नि सहिस्णुता।। ७४

रक्तं त्रिकोणं तिक्तं स्वादूर्ध्वमार्गप्रवाहकम्।
दीप्तं च तैजसं तत्त्वं प्रवाहे चतुरंगुलम्।। ६६

रविमध्ये गतश्चन्द्रः जलमध्ये गतोरविः
ज्ञातव्यं गुरुतः शीघ्रं नवेद्यं शास्त्र कोटिभिः।। ९८

श्लोक	**पृ.**
रवौसंक्रमनी नाड़ी गलान्ते च प्रसर्पति। खानिलवह्नि योगेऽपि रौरवं जगती तले।।	१०२
रागद्वेषस्तथा लज्जा भयं मोहश्च पंचमम्। नभः पंचगुणं प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम्।।	७१
रात्र्यंतयामवेलायां प्रसुप्ते कामिनीजने। ब्रह्मजीवं पिवेद्यस्तु बाला प्राणहरो नरः।।	९२
रात्रौ चन्द्रो दिवासूर्यो वहेद्ययस्य निरंतरम्। जानीयात्तस्य वै मृत्युः षण्मासाभ्यंतरे भवेत्।।	१०९
रेचको हरते पापं कुर्याद्योगपदं व्रजेत्। पश्चात्संग्रामे च तिष्टेल्लयबन्धं च कारयेत्।।	११३
ल	
लं वीजं धरणीं ध्यायेच्चतुरस्रां सुपीतभाम्। स्वगंधस्वर्णवर्णत्वमारोग्यं देहलाघवम्।।	७४
लाभादिन्यपि कार्याणि पृष्टानि कीर्तितानि च। जीवं विंशति सिद्ध्यन्ति हानिर्निःसरणे भवेत्।।	८५
लाभः पृथ्वी कृतोऽह्निः स्यान्निशायां लाभकृज्जले। वह्नौ मृत्युः क्षतिर्वायौ नभस्थानं दहेत्क्वचित्।।	६७
व	
वं बीजं वरुणं ध्यायेदर्धचन्द्रं शशिप्रभम्। क्षुत्तृष्णादि सहिष्णुत्वं जलमध्ये च मज्जनम्।।	७४
वर्णाकारं स्वादु वहमव्यक्तं सर्वगामिनम्। मोक्षदं नाभसं तत्त्वं सर्वकार्येषु निष्फलम्।।	६६

श्लोक	पृ.
वहनाड़ी स्थितो दूतो यत्पृच्छति शुभाशुभम्। तत्सर्द सिद्धिमायाति शून्येशून्यं न संशयः।।	७३
वाचां सिद्धिश्चतुर्थेतु दूरदृष्टिस्तु पंचमे। षष्टेत्वाकाशगमनं चंडवेगश्च सप्तमे।।	७९
वापीकूपतड़ागादि प्रतिष्ठा स्तंभभेदयोः। यात्रा दाने विवाहे च वस्त्रालंकारभूषणे।।	४९
वामाचार प्रवाहेन न गच्छेत्पूर्वमुत्तरे। परिपंथि भयं तस्य गतोऽसौ न निवर्तते।।	४३
वामाचारस्तदा दक्षः प्रवेशे यत्र वाहने। तत्रस्थः पृछते दूतस्तस्य सिद्धिर्नसंशयः।।	१०४
वामेचामृतरूपस्याज्जगदाथायनं परम्। दक्षिणे चरभागेन जगदुत्पादयस्तथा।।	३९
वामे वा दक्षिणे वाऽपि उदयाः पंचकीर्तिताः। अष्टधा तत्त्वविज्ञानं श्रृणु वक्ष्यामि सुन्दरी।।	६०
वामे वा दक्षिणे वापि एवं संक्रमतेऽपि वा। कृत्वा तत्पादमादौ च यात्रा भवति सिद्धिदा।।	४४
वामे वा यदि वा दक्षे यदि पृच्छति पृच्छकः। पूर्णे घातो नजायेत शून्यघातं विनिर्दिशेत्।।	८६
वायुस्तेजस्ततश्चापस्ततः पृथ्वी समुद्भवः। एतानि पंच भूतानि विस्तीर्णानि च पंचधा।।	२८
वामाचारे समं नाम यस्य तस्य जयो भवेत्। पृछको दक्षिणे भागे विजयी विषमाक्षरः।।	८७

श्लोक **पृ.**

विद्यारंभादि कार्येषु बान्धवानां च दर्शने।
जलमोक्षे च धर्मे च दीक्षायां मंत्रसाधने।। ४९

विपरीताक्षरं प्रश्ने रिक्तायां पृच्छको यदि।
विपर्ययं च विज्ञेयं विषमस्योदये सति।। १०५

विशाखोत्तर फाल्गुन्यौ हतश्चित्रा पुनर्वसुः।
अश्विनी मृगशीर्षेच वायु तत्त्वमुदाहृतम्।। ७३

विश्वस्य वेशिकाशक्तिर्नेत्राभ्यां परिदृश्यते।
तत्रस्थ तु मनोयस्य याममात्रं भवेदिह।। ११४

विषमांके दिवारात्रो विषमांके दिवाधिपः
चन्द्रनेत्राग्नितत्त्वेषु वंध्यापुत्रमवाप्नुयात्।
ऋत्वारंभे रविः पुंसां स्त्रीयां चैव सुधाकरः
अनयोः संगमे प्राप्ते वंध्यापुत्रमवाप्नुयात्।। ९५

विषमे गर्भपातः स्यात्भावे चाथ नपुंसकः।
तत्त्ववित्सुविजानीयात्कथितं तत्र सुन्दरी।। ९७

विषमे वह्नि तत्त्वस्य ज्ञायते केवलं नभः।
तत्कुर्याद्वस्तु संग्राह्यं द्विमासे च महर्घता।। १०२

विषमे संपादये यात्रा मनसापि न चिंतयेत्।
यात्राहानि करी तस्य मृत्युक्लेशौ न संशयः।। ५५

व्यवहारे खलोच्चाटे विषविद्यादि वंचकः।
कुपिता स्वामिचौराद्या पूर्णस्थायुर्भयंकरः।। ४७

व्याजामे मारणोच्चाटे षट्कर्मादि साधने।
यक्षणी यक्ष वैताली विषभूतादि विग्रहे।। ५२

श्लोक **पृ.**

व्योम्नि न किंचित्कर्त्तव्यमभ्सेद्योगसेवया।
शून्यता सर्वकार्येषु नात्रकार्या विचारणा।। ६४

.....वुधोजलार्दिंदुशुक्रो वह्नीरवि कुजस्तथा।
वायुराहुः शनैर्व्योम्नि गुरुरेव प्रकीर्तितः।। ६९

श

शक्तिरूपे स्थितश्चन्द्रो वामनाड़ी प्रवाहकः।
दक्षनाड़ी प्रवाहश्च शंभुरूपी दिवाकरः।। ३८

शत्रुन्हन्यात्स्वरबले तथा मित्रसमागमे।
लक्ष्मी प्राप्ते स्वरबले कीर्तिः सुरबले सुखम्।। ३२

शशांकं वारयेद्रात्रौ दिवावार्यो दिवाकरम्।
इत्याभ्यासरतोनित्ये सयोगी नात्र संशयः।। ४१

शयने वा प्रसंगे वा युवत्यालिंगनेऽपिच।
यः सूर्येण पिवेच्चन्द्रं सभवेन्मकरध्वजः।। ९२

शस्त्राभ्यासे च गमने मृगया पशुविक्रमे।
इष्टका काष्ठपाषाणे रत्नघर्षणदारणे।। ५२

शांते शुद्धे सदाचारे गुरुभक्तैकमानसे।
दृढ़चित्ते कृतज्ञे च देयं चैव सुरोदयम्।। ३०

शान्तिकं पुष्टकं चैव दिव्यौषधिरसायणम्।
सुस्वामीदर्शने मैत्री वाणिज्यान्नसंग्रहे।। ४९

शिरसि व्योमतत्त्वेन ज्ञातव्यो घातनिर्णयः।
एवं पंच विधो घातः स्वरशास्त्रे प्रकाशितः।। ८७

शिवमालिंगते शक्त्या प्रसंगे दक्षिणेऽपि वा।
तत्क्षणाद्दापयेद्यस्तु मोहयेत्कामिनी शतम्।। ९२

श्लोक	पृ.
शुक्लपक्षे द्वितीयायां अर्क वहति चन्द्रमा। दृश्यते लाभदं पुंसां सोमे सौख्ये प्रजायते।।	४३
शुक्रशोणितमज्जा च मूत्रं लाला च पंचमम्। आपः पंच गुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम।।	७१
शुभं किंचिन्न कर्त्तव्यं नाड़ीश्च क्रमणे तथा। अन्यतत्र न कर्त्तव्यं पुण्यदानादि कोटिधा।।	५५
शुभाशुभानि कार्यानि क्रियतेऽहर्निशं यदा। तदा कार्यनिरोधेन कार्यनाड़ी प्रचालयेत्।।	४८
शून्यनाड्या विपर्यस्तं यत्पूर्व प्रतिपादितम्। जायते नान्यथा चैव यथा सर्वज्ञ भाषितम्।।	४७
शून्ये शून्यं युगे युग्मं गर्भपातश्च संक्रमे। सूर्यभागेकृतेपुत्रः चंद्रवारेतु कन्यका।।	९६
शून्यांगं पुरतः कृत्वा जीवांगोपयेच्चु यः। जीवांगंघातमाप्नोति शून्यांगं रक्षते सदा।।	८६
श्रृणुत्वं कथितं देवी देहस्थं ज्ञानमुत्तमम्। येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते।।	३०
श्रुत्यौरंगुष्टकौ मद्यांगुल्यौ नासापुटद्वये। वदने प्रांत्यके चान्यांगुलीशेषे दृगंतयोः।।	६१
श्वेतमर्धेदुसकाशं स्वादुकाषायमोदकम्। लाभकृद्वारुणं तत्त्वं प्रवाहे षोडशांगुलम्।।	६६
श्वासप्रवेशकाले तु दूतो जल्पति वांछितम। तस्यार्थसिद्धिमायाति निर्गमेनैव सुंदरी।।	८५

श्लोक	पृ.
श्वासे सकारे संस्थेतु यद्धाने दीयते वुधैः। तद्धानं जीवलोकेऽस्मिन् कोटिकोटि गुणं भवेत्।।	३८
स	
सप्त नव त्रयः पंच वारात्संगस्तु सूर्यगे। चन्द्रे द्वितूर्य षट् कृत्वा वश्या भवति कामिनी।।	९३
समानो नाभिदेशेतु उदानो कण्ठमध्यगः। व्यानो व्यापि शरीरस्थ प्रधाना दश वाहवः।।	३६
सम्पूर्ण वहते सूर्यश्चन्द्रमा नैव दृश्यते। पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम्।।	१०९
सम्पूर्ण वहते चन्द्रः सूर्यो नैव च दृश्यते। मासेन जायते मृत्युः कालाज्ञानेन भाषितम्।।	१०९
सर्वशास्त्रपुराणादि श्रुति वेदान्त पूर्वकम्। स्वरज्ञानात्परं तत्त्वं नास्ति किंचिद्वरानने।।	३२
सर्वे कर्माणि सिध्यन्ति दिवारात्रि गतान्यपि। सर्वेषु शुभकार्येषु चंद्रवारं प्रशस्यते।।	५१
सर्वलोकस्य जीवानां न देहेभिन्न तत्त्वकम्। भूर्लोकात्सत्यपर्यन्तं नाड़ीभेदः पृथक् पृथक्।।	६०
साकारैर्वा निराकारै शुभंवायु चलेचले। कथयन्ति शुभं किंचित्सुरज्ञानं वरानने।।	३१
सार्द्धद्विघटिकाज्ञेया शुक्ले कृष्णे शशीरवीः च। वहत्यैक दिनेनैव यथा षष्टीघटी क्रमात्।।	४०
सुभिक्षं राष्ट्रवृद्धिः स्थाद्बहुसस्या वसुंधरा। बहुवृष्टिस्तथा सौख्यं पृथ्वीतत्त्वं वहेद्यदि।।	१००

श्लोक **पृ.**

स्वरज्ञानात्परंज्ञानं स्वरज्ञानात्परंधनम्।।
स्वरज्ञानात्परं मित्रं नैव दृष्टं न वा श्रुतम्।। ३१

स्वरज्ञानरहस्याचु न किंचिदिष्टदेवता।
स्वरज्ञान रतोयोगी सयोगी परमोमतः।। ५८

स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरे गांधर्वमुत्तम।
स्वरे च सर्व त्रैलोक्यं स्वरमात्मस्वरूपकम्।। ३०

सुषुम्नाया प्रवाहेच सिद्धि मुक्ति फलानि च।
सूर्य नाड़ी प्रवाहेच रौद्रं कर्माणि कारयेत्।। ४०

सुषुम्ना सूर्यसंधेन ऋतुदानं तु योजयेत्
अंगहीनः पुमास्तसय जायते कृष्ण विग्रहः।। ९५

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ज्ञानं सुवोधं सत्यमव्ययम्।
आश्चर्य नास्तिके लोके आधारे स्वस्तिके जने।। २९

सूर्यचन्द्रौ समाकृष्य सर्पाकांत्याधरोष्टयोः
महापद्मे मुखंस्पृष्टा वारंवारमिदं चरेत्।। ९३

सूर्येण बध्यते सूर्यो चन्द्रश्चन्द्रेण बध्यते।
यो जानाति क्रियामेतां त्रैलोकां वशयेत्क्षणात्।। ४१

सूर्येण वहमानायां सुषुम्नायां मुहुर्मुहुः।
शापं दद्याद्वरंदद्यात्सर्वथा च तदन्यथा।। ५५

सूर्योदये यदा सूर्यो चन्द्रश्चन्द्रोदये तथा।
सिद्धयन्ति सर्वकार्याणि दिवारात्रि गतान्यपि।। ४३

स्कंदस्थितो द्वयोवह्निर्नाभिमूले प्रभंजनः।
जानुदेशे क्षितिस्तोयं पदांते मस्तके नभः।। ६३

श्लोक	पृ.
स्त्रीणां दंता विभूषायां वृष्टेरागमने तथा। गुरुपूजा विषादीनां चालने च वरानने।।	५०
स्थिरकार्याण्लंकारे दूराध्वगमने तथा। आश्रमे हर्म्यप्रासादे वस्तुनां संग्रहेऽपिच।।	४८
स्वरज्ञानं शिरो यस्य लक्ष्मीतलपदे भवेत्। एकत्र शरीरं यस्य तस्य सौख्यं सदा भवेत्।।	११५
स्वरज्ञान बलादग्रे निस्फलं कोटिधाभवेत्। इहलोके परत्रैव स्वरज्ञानी बलीसदा।।	८९
स्वरज्ञानी नरोयत्र धनं नास्ति ततः परम्। गम्यते स्वरज्ञानेन अनाया सकलं लभेत्।।	७५
स्वरतत्त्वं तथा युद्धं देविवश्यं त्रियस्तथा। गर्भान्रोगकालाख्यं नवप्रकरणान्वितम्।।	११६
स्वरहीनं च देवज्ञं नाथहीनं गृहंयथा। शास्त्रहीनं यथावक्ता शिरोहीनं च यद् वपुः।।	३१
स्वरेण गम्यते देशे भोज्यं स्वरबले तथा। लघुदीर्घ स्वरबले मलं चैव निवारयेत्।।	३२
स्वीयांगे वहतेनाड़ी तन्नाड़ी रोधनं कुरु। मुखबन्धममुंचन्वै पवनं जायते युवा।।	११३
ह	
हं बीजं गगनं ध्यायन्निराकारं बहुप्रभम्। ज्ञानं त्रिकालविषयं ऐश्वर्यमाणिमादिकम्।।	७५
हकारस्य सकारस्य विनाभेदः स्वरः कथम्। सोऽहं हंस पदेनैव जीवोजयति सर्वदा।।	८६

श्लोक

हकारो निर्गमो प्रोक्तः सकारोक्तं प्रकाशने। पृ.
हकारः शिवरूपश्च सकारः शक्तिरुच्यते।। ३८

....

परिशिष्ट–२

शब्दानुक्रमणिका

अंगुष्ठ– ६१, ८४,
अनल– ६२,
अनुराधा ७२,
अन्न– ४९, ५०
अपान
अभिजित्– ७३,
अरुंधती– ११०,
अर्क– ११३
अलंकार– ४८
अलंबुषा–९,३५
अव्ययम्– २१,
अश्विनी– ७३,
अष्टाक्षर– ९२,
अस्थि– ७०,
अहोरात्र– ४२,१०८
आग्नेय– ६९
आनखाग्र– ७९
आमात्य– ४६
आर्ति– ५०
आर्द्रा– ७३
आश्रम– ४८
इड़ा– ५,३७,५१,५९,६९,११२
इन्दू– ४१
उदर– ८६
उदान– ३६
उत्तर फाल्गुणी– ७३
उत्तराभाद्रपत्– ७३
उत्तराषाढ़ा– ७३

उन्मीलन- ३७
ऋतुदान- ९५
एकादशी
कन्यका- ९६
कन्या- ३२,९६
कर्कट- ४२
कलह- ४३,४६
कलिका- ३३
कामिनी- ९२
कालपद्म- १०८
कालविज्ञान- ७६,५०
कालव्याधि- ५०
काल- ११६
काष्ठ- ५२
कुण्डली- ३४,
कुम्भक- ८५, ११२
कुहू-९,३५,३६,
कूप- ४९
कूर्म- ३६,३७
कृकल- ३६,३७
कृतिका- ७३
कोटि-३८,५५,७९,८९,९८,११६
क्रय-५३
कीड़ा-७०
क्रूर-५१,५३,५४
क्षिति-६२,६३,६४,
क्षुत्कृत-३७
क्षुधा-७१,
क्षोभ-५३,
खड्ग-५३,
खलोच्चाट-४७,
खरोष्ट्र-५२,
खेट-१०३
गंगा-७९,

गगन–७५,
गर्भ–९५,९६,९७,९८,११६
गर्भाधान–९७
गांधारी–९,३५,
गीत–५०,
गुरु–३०,४१,४६,५०
गुरुतल्प–३०
गुह्य–२९,३६
घटि–४०,११५
चन्द्रः–४०,४५,७०,८१,९८,१०५.१०८,१०९
चिकित्सा–५०,१०५,
चैत्र–९९,१००
चौर–४६,४७,
छत्र–५०,
जगती–१०२,
जयहास्य–७०,
जलमातरः– १०३,
जिह्वा–८,२४,३६,११०,
जीव–१३,१५,१८,२०,२२,२३,३७,३८,३९,४८,५६,६०,६८,६९,८२,
८५,८९,९०,९१,९२,९७,१०७,११३
जीवस्थान–९१
जीवरक्षा–८२,११३
जीवाकार–१०४
ज्येष्ठा–१३,७२,७३,
ज्वरित–५०,
तड़ाग–४९,
तुष्टि–७०
तिर्यक्–६२,६३,६५,६६
तिलक–५०,
तुला–४२,
तृष्णा–७१,
तैजस–२८,६५,६६
तोय–६३,६८,
डक्कार–३७

दक्षरंध्र–६८
दंडक–९५
दर्पण–६१
दान–३८,५५,९५,
दिवाकर–३८,४१,४४,८१,१०८,
दिव्यौषधि–४९,
दीक्षा–४९,
दुर्भिक्ष–९९,१०१
दुहिता–९८
दूत–१६,७३,८५,९६,१०३,१०४,१०५,
देव–१८,२७,२८,३१,३२,३३,४७,५८,७५,७६,७७,७९,९१,१०८
देवदत्त–९,३६,३७,
देवी–१६,१६,१८,२०,२२,२५,२७,२८,२९,३०,५८,७६,७७,७८,७९,
८६,९०,९१,९७,११७
द्वंद्वयुद्ध–८८,
द्वेष–५३,७१,
धनंजय–९,३६,३७,७३,
धनिष्ठा–१३,७२,७३,
धनु– १३,४२,५०
धन्वी–५०,
धराजल–७०,
धातुसाम्य–११३
ध्रुव–११०,
ध्वंस–४४,५१,५२,
नपुंसक–१९,२०,९६,९७,
नभ–६२,६३,६४,६७,६८,७१,७२,७८,९६,१०२,
नरयुद्ध–९१,
नाग–९,३६,३७,
नाड़ीदक्षा–८५,
नाभि– ८,९,१०,३४,३६,
निद्रा–१४,१९,७१,९३,
निरंजन–२८,५९
निराकार–१३,१७,२६,२८,३१,९०,११५,
निराकुला–५६,

निराहार–५६,
निशा–४२,८५,
नृत्य–५०,
नृप–४६,
परमेश्वरी–९३,
पार्थिवी–६९,८८,९७,
पाषाण–५२,
पिंगला–८,९,२४,३५,३७,३८,४०,५१,५३,६७,६९,८१,१०५,१०८,११२
पितृदोष–१०३
पीत–११,६१,६४,६६,७४,
पुनर्वसु–१३,७३,
पुरंदर–८४,
पुष्टि–७०,११३
पुष्य–१३,७३,
पूर्वाफाल्गुणी–७३
पूर्वाभाद्रपदा–७३
पूर्वाषाढ़ा–७३
पूषा–९,३५
पृथा–६७,
पृथ्वी–तत्त्व–१०,११,१२,१३, ७१,७२,
प्राण–७,८,९,१३,१४,१५,१७,२२,२३,३१,३४,३६,३७,४१,५६,५७,
६०,७७,७८,७९,८३,८४,८८,९१,९२,१०५,१०७,११२,११५,
फूत्कार–७२
बुद्धिमान–२४,८८,९९,१०९, च9
बुध–११,३८,४१,४३,५३,६९,
ब्रह्मज्ञान–७१,
ब्रह्माण्ड–१७,२६,२७,२८,२९,९०,११५,११६
बन्धु–२३,७७,१०५,
भय–११७,
भरणी–१३,७३,
भास्कर–३७,४०,४५,११६
भुजंग–३४,
भ्रुव–११०
मघा–१३,७३

महार्घ–७६
महिषा–५२,
मही–१०३
महेश्वर–२८,३१,९१,१०५
मांस–७०,७१
मारण–१०,५२,५३,६३,६४
मारुत–५४,६२,६६,६७,७८,९७,१००,१०७,१०८
माहेय–६३,६३,
मिथुन–४२,
मीन–४२,
मूत्र–२४,३२,७१,११०,
मूर्छित–२२,५०,१०३,
मूल–१३,२८,३६,६३,६८,६९,७३,
मृगषिरा–१३,
मृगया–५२,
मेदिनी–८२,
मेष–२१,४२,१००,१०१,१०२,
मोह–७१,९२,
मोहमाया–९२
यं–१३,७५,
यक्ष–५२,५३,
यक्षणी–५२
युद्धकाल–८४,८५,
यमयुद्ध–८९,९१,
यमालय–१०४,
यशस्विनी–९,३५,
योगपद–२५,११३
योगी–९,१४,१९,२३,२४,२५,२६,२९,३९,४१,५८,५९,६१,६५,७४,८२,
८८,९३,९९,१०८,११२,११३,११४,११५,
रं–१३,७४,
रक्त–११,१२,६२,६६,७१,७२,१११,
रक्षपालक–७८,
रति–७०,१०७,
रवि–४०,४५,५६

राग–७१,
रिपु–८१,८४
रेचक–२५,११२,११३,
रोहिणी–१३,७२,७३,
रौद्र–४०,१०४,
रौरव–१०२,
लं–१२,७४,
लज्जा–७३,
लिंगदेश–३६,
वं–१३,७४,
वंध्या–१९,९५,
वापी–४९,
वपु–३१,
वरानन–३१,३२,४९,५४,७०,७७,
वशीकरण–१८,२६,९४,११७
वसुंधरा–८३,१००,
वह्नितत्त्व–१०२
वांछित–१६,४५,८५,११५
वाणिज्य–४९,
वायु–७,८,९,१०,११,१२,१३,१५,१६,१७,१९,२०,२१,२२,२३,२४,२५,
२८,३१,३४,३६,३७,४५,५१,५९,६०,६१,६२,६३,६४,६५,६६,६७,
६८,६९,७०,७१,७२,७३,७५,७७,७८,७९,८२,८३,८४,८५,८६,८८,
८९,९६,९७,९९,१००,१०१,१०२,१०३,१०४,१०७,१०८,१०९,११०,
११५,
वायु–तत्त्व–१५,१६,१९,२०,२१,२२,५१,६१,६२,६३,६४,६५,६६,६७,
६८,६९,७०,७२,७३,७५,८२,८६,८८,९६,९७,९९,१००,
१०१,१०२,१०३,
वारुण–६२,६३,६८,८८,९७,९८,
विक्रय–५३,
विग्रह–५२,८८,९५,
विद्याशास्त्र–७९,
विशाखा–१३,७३,
विशाद–५०,
विषविद्या–४७,

विषुवंत–५४,६०,
वृष–१३,४२,
वृष्टि–२१,१००,१०१,
वेला–४७,९२,९३,९९,१००,१०१,
वेश्या–५१,
वैताली–५२,
व्यान–९,३६,
व्याजाम–५२,
व्योम–६७,८७,१००,१०१,
शक्ति–३४,४०,७८,११४,
शंखिनी–९,३५,३६,१३,
शतभिषा–७३,
शंभु–३८,
शशि–४९,७४,१०७,१०८,
शशांक–४१,
शाकिनी–२२,१०३,
शीतल–२१,६५,१०१,
शुक्र–११,४१,६९,७१,
शुक्ल–४१,९९,
शून्य–६९,७३,८३,९६,
शून्यता–२१,६४,१०१,
शोक–५०,
शोन–६५,
श्रवण–२३,७२,७३,१०७,
श्रुति–३२,
श्लेषा–७३,
षण्मुखी–२५,११४,
संगम–२४,५१,९०,९५,११२,
संग्राम–११३,
संग्रह–४९,४९,५०,१०२
सत्त्व–३०,
संधान–८८,
सप्तप्रोथ–११०
समर्घ–७६,

समान–९,३६,
समीर–६३,६५,८३,८५,
सिंह–४२,
सिद्धि–१२,१४,१५,१६,१७,२१,२२,२४,२६,२७,३२,३९,४०,४१,४५,
४६,४७,४८,५१,५९,६४,६५,६७,६८,७३,७५,७९,८१,८३,८५,
८८,८९,९०,१०२,१०४,११२,११७
सुत–७३,९८,
सुंदरी–८५,
सुधाकर–९५,
सुधारुणा–१०१,
सुभिक्ष–९९,१००,१०१,
सुषुम्ना–८,९,१७,१९,२०,२१,२२,२४,२५,३१,३५,३७,३८,३९,४०,४७,
४८,५३,५४,५५,५६,५७,६९,९०,९५,९६,९७,१००,१०५,११२,
११५
सूक्ष्म–२९,५६,
सृष्टि–७,९,२९,३१,
सौख्य–४३,९७,१००,१०१,११५
स्तंभ–४९,५३,६३,८१,
स्तंभन–१०,२५,५३,११३
स्वरज्ञान–९,१६,१७,२०,२६,३०,३१,३२,५८,७५,८९,९९,१०५,११५,
११६,
स्वरबल–३२,३३,३४,८२,
स्वरोदय–७,२६,२९,३०,३३,३९,७५,७६,११७,
स्वल्पजीवी–९७,
स्वाति–१३,७३,
स्वामि–४७,४९,५०,
हं–१३,३८,७५,
हंस–१४,१६,२९,३८,७९,८६,
हतश्चित्रा–७३,
हर्म्यप्रासाद–४८,
हस्तजिह्वा–९,३५
हस्तिनी–३५,

....

परिशिष्ट–३

पारिभाषिक शब्दावली

अजपा–जप	:	श्वास के साथ मंत्र की स्वतः आवृत्ति।
अनाहत चक्र	:	शरीर में विद्यमान सात चक्रों में से चौथा चक्र जिसका स्थान हृदय के पीछे मेरुदण्ड में है।
अनुराधा	:	सत्ताईस नक्षत्रों में से एक नक्षत्र का नाम।
अपस्	:	जल–तत्त्व।
अपान	:	पंचप्राणों में से एक, जो उदर–प्रदेश में स्थित होता है, यह उत्सर्जक क्रियाओं में सहायक होता है।
अभिजित्	:	सत्ताईस नक्षत्रों में से एक नक्षत्र का नाम।
अमृत	:	ऐसी अवस्था जो जीवन और मृत्यु से परे है अर्थात् जिससे परमानन्द की अनुभूति होती है।
अमावस्या	:	कृष्णपक्ष की पन्द्रहवी तिथि।
अयन	:	आनेवाला, जानेवाला; सूर्य का मार्ग; छह मास और तीन ऋतु; एक वर्ष में दो अयन होते हैं।
अलंबुषा	:	शरीर में विद्यमान नाड़ियों में से एक का नाम।
अव्यय	:	विकार रहित अर्थात् शिव स्वरूप।
अश्विनी	:	सत्ताईस नक्षत्रों में से एक नक्षत्र का नाम।
अष्टमी	:	चान्द्रमास के प्रत्येक पक्ष की आठवी तिथि।

अग्नि–तत्त्व : पंचतत्त्वों में से एक तत्त्व।

आकाश–तत्त्व : सृष्टि के कारण पंचतत्त्वों में से एक।

आज्ञाचक्र : भ्रूमध्य के पीछे मेरुदंड के शीर्ष पर स्थिर चक्र।

आग्नेय : अग्नि–तत्त्व, आग से सम्बन्ध रखने वाला, स्कंध या कार्तिकेय की उपाधि।

आर्ति : दुःख, कष्ट।

आर्द्रा : सत्ताईस नक्षत्रों में से एक नक्षत्र का नाम।

इड़ा–नाडी : शरीर में विद्यमान तीन प्रमुख नाडियों में से एक, यह शरीर में बायीं ओर स्थित है।

उत्तर फाल्गुनी : सत्ताईस नक्षत्रों में से एक नक्षत्र का नाम।

उत्तराभाद्रपत् : सत्ताईस नक्षत्रों में से एक नक्षत्र का नाम।

उत्तराषाढ़ा : सत्ताईस नक्षत्रों में से एक नक्षत्र का नाम।

उदान : पाँच प्रकार के प्राणवायुओं में से एक, जो चेहरे और कण्ठ में रहता है।

उपप्राण : पाँच प्रकार के प्राणवायुओं के अतिरिक्त पाँच उपप्राण भी हैं।

ऋतुदान : मासिक–धर्म के काल में गर्भ–धारण।

एकादशी : चान्द्रमास के प्रत्येक पक्ष की ग्यारहवी तिथि।

कर्कट : बारह राशियों में से एक राशी का नाम जिसे कर्कराशी कहा जाता है।

कामिनी : मनोहर रमणी।

कालपद्म : कालरूपी कमल अर्थात् देहरूपी

		मल।
कालविज्ञान	:	काल–गणना का विज्ञान।
कुण्डलिनी	:	मनुष्य की चेतना शक्ति जो मूलाधार में विराजमान होती है, योगी जन इसको जागरित कर सुषुम्ना के मार्ग से सहस्रार चक्र तक ले जाकर परम तत्त्व का अनुभव करते हैं।
कुंभक	:	श्वास को अन्दर लेकर रोकना।
कुहु	:	एक नाड़ी का नाम जो लिंगस्थान में स्थित होती है।
कूर्म	:	शरीर में विद्यमान सहायक प्राणवायु जिससे हमारे पलक झपकते हैं।
कृकल	:	सहायक प्राणवायुओं में से एक जिसके कारण छींक आती है।
कृतिका	:	सत्ताईस नक्षत्रों में से एक नक्षत्र का नाम।
केशव	:	भगवान् नारायण।
क्षिति	:	पृथ्वी।
क्षुत्	:	क्षुधा।
क्षोभ	:	भय।
ख	:	आकाश।
खड्ग	:	तलवार।
खलोच्चाट	:	दुष्ट के द्वारा उच्चाटन करना।
खर	:	गधा
उष्ट्र	:	ऊँट
खेट	:	आकाश–तत्त्व।
गांधारी	:	शरीर में विद्यमान एक नाड़ी।
गुरुतल्पगे	:	गुरु पत्नी गामी।
चैत्र	:	एक महीने का नाम।
जलमातर	:	एक रोग जिसका कारण जलमातृकाएँ होती हैं।
जीव	:	प्राणी।

जीवरक्षा	:	प्राणी की रक्षा होना अर्थात् यदि स्वरज्ञानी स्वर–योग का पालन करे तो वह सुरक्षित रहता है।
जीवाकार	:	स्वर–योग के नियमों का पालन करना अर्थात् स्वर–योग के अनुसार एक प्राणी का दूसरे प्राणी के साथ व्यवहार करना।
जीवांतकारक	:	स्वर–योग के ऐसे नियमों का उल्लंघन जिनके कारण प्राणी की मृत्यु हो सकती है।
ज्येष्ठा	:	एक नक्षत्र का नाम।
तिलकम्	:	चन्दन की लकड़ी या उबटन आदि से किया गया चिह्न।
तुला	:	एक राशी का नाम।
तोय	:	जल–तत्त्व।
दक्षरंध्र	:	नाक का दाहिना भाग।
दण्डक	:	छड़ी, डण्डा आदि।
दुर्भिक्ष	:	अकाल।
दुहिता	:	बेटी।
दूत	:	प्रश्न कर्ता।
देवदत्त	:	सहायक प्राणवायु।
धनंजय	:	सहायक प्राणवायु।
धनिष्ठा	:	एक नक्षत्र का नाम।
धनु	:	एक राशी का नाम।
धातुसाम्य	:	अच्छा स्वास्थ्य।
ध्रुव	:	स्थिर, दृढ़।
ध्वंस	:	नाश होना।
नपुंसक	:	उभयलिंगी।
नभस्	:	आकाश–तत्त्व।
नरयुद्ध	:	मनुष्यों के बीच युद्ध।
नाग	:	सहायक प्राण।
निरंजन	:	ईश्वर।
निराकार	:	आकार रहित।
निराकुल	:	भरा हुआ, व्याप्त।

निराहार	: खाली पेट।
पिंगला	: शरीर में विद्यमान प्रमुख तीन नाड़ियों में से दाईं ओर की नाड़ी, इस नाड़ी को सूर्य-नाड़ी भी कहा जाता है।
पितृदोष	: ऐसे रोग जो पितृदोष के कारण होते हैं।
पुनर्वसु	: एक नक्षत्र का नाम।
पुरंदर	: इन्द्र।
पुष्य	: एक नक्षत्र का नाम।
पूर्वाफाल्गुणी	: एक नक्षत्र का नाम।
पूर्वाभाद्रपदा	: एक नक्षत्र का नाम।
पूर्वाषाढ़ा	: एक नक्षत्र का नाम।
पूषा	: एक नक्षत्र का नाम।
पृथाम्	: पृथ्वी तत्त्व।
प्राण	: वायु जिससे शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा प्राप्त होती है।
ब्रह्मज्ञान	: परम-तत्त्व की पहचान।
फूत्कार	: फोकी मिट्टी वाली भूमि अर्थात् ऐसी मिट्टी वाली भूमि जो फूंक मारने से उडने लगती हो।
भरणी	: एक नक्षत्र का नाम।
भास्कर	: सूर्य।
भुजंग	: सर्प
मघा	: एक नक्षत्र का नाम।
महार्घ	: अति मूल्यवान्।
महिषा	: भैंस।
मही	: पृथ्वी।
महेश्वर	: शिव।
मारुत	: वायु-तत्त्व।
माहेय	: पृथ्वी-तत्त्व।
मिथुन	: एक राशी का नाम।
मीन	: एक राशी का नाम।
यं	: वायु-तत्त्व का बीज मन्त्र।

यमयुद्ध	:	यम के साथ युद्ध।
यमालय	:	मृत्यु।
यशस्विनी	:	शरीर में विद्यमान विशेष दस नाड़ियों में एक का नाम।
रं	:	अग्नि–तत्त्व का बीज मन्त्र।
राग	:	वर्ण।
रेचक	:	अन्दर से श्वास को बाहर निकालना।
रोहिणी	:	एक नक्षत्र का नाम।
रौद्र	:	रुद्र जैसा प्रचंड।
रौरव	:	डरावना।
लं	:	पृथ्वी–तत्त्व का बीज मन्त्र।
ली	:	पिघलना।
वं	:	जल–तत्त्व का बीज मन्त्र।
बन्ध्या	:	बाँझ स्त्री।
वपु	:	शरीर।
वरानन	:	सुन्दर मुख वाली स्त्री।
वशीकरणक	:	जिसके द्वारा वश में किया जा सके।
वसुंधरा	:	पृथ्वी– तत्त्व।
वारुण	:	जल–तत्त्व।
विशाखा	:	एक नक्षत्र का नाम।
विशाद	:	दुःख।
वृष	:	एक राशी का नाम।
वृष्टि	:	बारिश।
वेला	:	समय, ऋतु।
वेश्या	:	गणिका, बाजारू स्त्री।
वैताली	:	स्कन्ध का एक सैनिक।
व्यान	:	शरीर में विद्यमान पाँच मुख्य वायुयों में से एक का नाम जो समस्त शरीर में विराजमान रहता है।
व्योम	:	आकाश–तत्त्व।

शंखिनी : शरीर में विद्यमान विशेष दस नाड़ियों में एक का नाम।
शतभिषा : सत्ताईस नक्षत्रों में से एक नक्षत्र का नाम।
शशि : चन्द्रमा।
शशांक : चन्द्रमा।
शाकिनी : भूत पिशाच सम्बन्धी एक दोष का नाम।
शून्य : रिक्त।
श्लेषा : एक नक्षत्र का नाम।
षण्मुखी : एक प्रकार की प्राणायाम की मुद्रा।
संगम : नाड़ियों के मिलने का स्थान।
संग्राम : युद्ध।
संग्रह : ग्रहण करणा।
संधानम् : मिलाना, जोड़ना।
प्रोथ : मुख।
समर्घ : एक-मूल्य।
समान : पाँच प्राणवायुओं में से एक का नाम जो नाभि-प्रदेश में स्थित होता है।
समीर : वायु।
सस्य : हरा-भरा।
सुषुम्ना : शरीर में विद्यमान तीन नाड़ियों में से मध्य वाली नाड़ी।
सूक्ष्म : बारीक।
सृष्टि : रचना, कोई भी रचित वस्तु।
सौख्यम् : सुख, प्रसन्नता।
स्वरज्ञान : मनुष्य से सम्बन्धी तीन स्वरों की जानकारी अर्थात् चन्द्र-स्वर, सूर्य-स्वर एवं उभय स्वर की जानकारी।
स्वरबल : स्वरज्ञान की जानकारी के कारण प्राप्त होने वाला बल।

स्वरोदय	:	स्वरज्ञान की जानकारी प्राप्त होने पर स्वर बल से उचित स्वर को प्रवाहित करना।
स्वल्पजीवी	:	कम आयु वाला।
स्वाति	:	एक नक्षत्र का नाम।
हं	:	आकाश–तत्त्व का बीज मन्त्र।

....

[illegible] : [illegible] सम्बन्धी एक [illegible]

[illegible] : हृदय।

[illegible] : एक [illegible] का नाम।

[illegible] : एक प्रकार की प्राणायाम की मुद्रा।

[illegible] : नाड़ियों के मिलने का स्थान।

[illegible] : पुरुष।

[illegible] : ब्राह्मण लक्षण।

[illegible] : निरपेक्ष, [illegible]।

[illegible] : सूक्ष्म।

[illegible] : [illegible]।

[illegible] : जब प्राणवायुओं से [illegible] और शक्ति-प्रदेश [illegible] होता है।

[illegible] : वायु।

[illegible] : हठ-योग।

[illegible] : शरीर में स्थित तीन नाड़ियों में से [illegible] नाड़ी।

[illegible] : [illegible]।

[illegible] : [illegible], कोई भी [illegible] वस्तु।

[illegible] : [illegible]।

[illegible] : [illegible] से सम्बन्धी [illegible] की जानकारी अर्थात् [illegible] एवं उनके [illegible] की जानकारी।

[illegible] : [illegible] की जानकारी के कारण [illegible] होने वाला [illegible]।

Department of Libraries & Research
Jammu & Kashmir, Srinagar

978-81-936627-1-7

2017

Crown Printing Press, Sgr. Ph.: 9796737362